श्रेष्ठ पौराणिक नारियां

यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'

श्रेष्ठ पौराणिक नारियां

प्राचीन भारतीय वाङ्मय की एक विशिष्ट परंपरा रही है—वेदों से लेकर उपनिषद्, आरण्यक, ब्राह्मण ग्रंथ आदि के साथ ही अनेकशः पुराण और महाकाव्य। इनमें धार्मिक, ऐतिहासिक एवं सामाजिक परिवेश में सहस्रों गरिमामयी नारी-चरित्रों का समावेश है। पुराणों में ऐसी कितनी ही नारियों के अत्यंत रोचक तथा प्रभावशाली आख्यान उपलब्ध हैं।

ऐसी ही गरिमामयी महान् नारियों में **सावित्री, शकुंतला, तारामती, दमयंती** तथा **सीता** के नाम तेजोदीप्त उज्ज्वल नक्षत्रों की भांति जगमगा रहे हैं। सावित्री और सीता तो देवी पार्वती की भांति ही भारतीय नारी मात्र की आस्था एवं पूजा की प्रतीक हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में उपर्युक्त पांचों महान नारी चरित्रों की अत्यंत रोचक गाथाएं सहज-सरल भाषा में कही गई हैं। इनके जीवन-चरित्र आठ से लेकर साठ साल के वर्ग के पाठकों को भी नैतिक एवं आदर्श जीवन जीने के लिए समान रूप से प्रेरित करते हैं।

श्रेष्ठ पौराणिक नारियां

श्रेष्ठ पौराणिक नारियां

यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'

ISBN : 81-88060-05-4

मूल्य : सौ रुपये

प्रकाशक : **सुनील साहित्य सदन**
3320-21, जटवाड़ा, दरियागंज,
नई दिल्ली–110002 (भारत)

संस्करण : 2003

कलापक्ष : चेतनदास

शब्द-संयोजक : कल्याणी कम्प्यूटर सर्विसेज़
दरियागंज, नई दिल्ली-110002

मुद्रक : अजीत प्रिंटर्स
मौजपुर, दिल्ली–110053

SHRESHTHA PORANIK NARIYAN
by Yadvendra Sharma 'Chandra' Price. Rs. 100.00

Published By : **SUNIL SAHITYA SADAN**
3320-21, Jatwara, Daryaganj,
New Delhi - 110002 (INDIA)
Tel. : (011) 23270715, 23282733

मेरी ओर से

हमारे धार्मिक, ऐतिहासिक और सामाजिक परिवेश में कुछ नारी-चरित्रों का समावेश है जिनका जीवन-चरित्र आठ साल से साठ साल तक के पाठकों को नैतिक शिक्षा एवं आदर्श जीवन जीने की प्रेरणा देता है। पुराणों में भी जिनकी प्रशस्ति गाई गई है—ऐसे चरित्रों की शृंखला में सावित्री, शकुंतला, तारामती, दमयंती एवं सीता, आदि के नाम ब्रह्मांड में उज्ज्वल एवं तेजोदीप्त नक्षत्रों की भांति जगमगा रहे हैं। प्रस्तुत पुस्तक में इन्हीं प्रेरक नारी-चरित्रों की गाथा सहज-सरल भाषा में कही गई है। आशा है, मेरे इस प्रयास से पाठकों को अवश्य ही सही दिशा मिलेगी।

—लेखक

भारतीय संस्कृति की अन्य प्रेरणाप्रद पुस्तकें

पुस्तक	लेखक
• रामायण की श्रेष्ठ कहानियां	जयव्रत चटर्जी
• महाभारत की श्रेष्ठ कहानियां	श्री व्यथितहृदय
• श्रेष्ठ जातक कथाएं	श्री व्यथितहृदय
• हितोपदेश की श्रेष्ठ कहानियां	श्री व्यथितहृदय
• श्रीमद्भागवत की श्रेष्ठ कहानियां	श्री व्यथितहृदय
• उपनिषदों की श्रेष्ठ कहानियां	श्री व्यथितहृदय
• श्रेष्ठ बौद्ध कहानियां	श्री व्यथितहृदय
• श्रेष्ठ ऐतिहासिक कथाएं	श्री व्यथितहृदय
• श्रेष्ठ पौराणिक कथाएं	राजकुमारी श्रीवास्तव
• पंचतंत्र की श्रेष्ठ कहानियां	राजकुमारी श्रीवास्तव
• भारत की श्रेष्ठ लोककथाएं	महेश भारद्वाज
• देश की आन पर	महेश भारद्वाज
• अवतारों की श्रेष्ठ कहानियां	महेश भारद्वाज
• श्रेष्ठ बेताल कथाएं *(पुरस्कृत)*	महेश भारद्वाज
• वेदों की श्रेष्ठ कहानियां	प्रेमाचार्य शास्त्री
• श्रेष्ठ पौराणिक नारियां	यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'
• श्रेष्ठ सांस्कृतिक कहानियां	सुशील कुमार
• राष्ट्रीय गौरव गाथाएं	कृष्णावतार पाण्डेय
• मनोरंजक बाल कहानियां	बलवीर त्यागी
• वीरता के प्रतीक	राकेशकुमार द्विवेदी
• स्वामी रामतीर्थ	नरेन्द्र वसिष्ठ
• स्वामी दयानंद	कविता वसिष्ठ

अनुक्रम

श्रेष्ठ पौराणिक नारियां

यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'

सावित्री

प्राचीन काल में मद्रदेश नाम का एक राज्य था। उस राज्य का राजा अश्वपति था। वह अच्छे आचरण का धर्मात्मा राजा था। वह बड़ा दानवीर था। उसके द्वार पर कोई भी आया हुआ संतुष्ट होकर ही जाता था। याचक को खाली हाथ लौटाना उसके धर्म के प्रतिकूल था।

राजा के राज्य में ब्राह्मणों को यज्ञ आदि करने की स्वतंत्रता थी। साथ ही कोई शूद्र भी उसके राज्य में अपमानित नहीं होता था। राजा क्षमाशील था।

राजा सभी तरह से सुखी और प्रसन्न था।

पर नियति के खेल निराले हैं।

वह किसी को भी पूरा सुख नहीं देती। कोई न कोई ऐसी कमी रख देती है जिससे प्राणी को कोई दुःख रहता ही है; अभाव रहता ही है।

अश्वपति को एक बहुत बड़ा दुःख था। वह यह था कि उसके कोई संतान न थी। युवा अवस्था में तो उसने कोई चिंता नहीं की। जब उसकी उम्र ढलने लगी तब उसे लगा कि निस्संतान मरना घोर पाप है। ऐसे व्यक्ति का न तो यह लोक सुधरता है और न परलोक। वह नरक का भागी होता है।

तब राजा ने अपने गुरुओं को बुलाकर उनसे विचार किया।

"गुरुवर! मैं हर तरह से सुखी हूं, पर निस्संतान होने के कारण मैं बड़ा दुःखी हूं। मुझे इस संकट से बचाने के लिए कोई श्रेष्ठ उपाय बताइए।"

विद्वानों ने सोचकर कहा, "आप देवी सावित्री की तपस्या कीजिए। वही प्रसन्न होकर आपको वरदान देगी।"

राजा ने सावित्री देवी की उपासना शुरू कर कर दी। वह नियमपूर्वक

उसकी सेवा करता था। कम अन्न खाता था। ब्रह्मचर्य का पालन करता था।

उसने अठारह वर्ष तक देवी सावित्री का जप-तप किया। एक लाख बार हवन किया।

अंत में सावित्री देवी उससे प्रसन्न हो गई। वह प्रकट होकर बोली, ''राजा! मैं तुमसे संतुष्ट हूं। तुमने मेरी जो उपासना-आराधना की है वह सराहनीय है। तुम जो चाहो मुझसे वरदान मांग सकते हो।''

अश्वपति की आंखों में खुशी के आंसू उमड़ आए। वह कुछ बोलना चाहता था पर उससे बोला नहीं गया।

''बोलो राजा, बोलो।'' सावित्री देवी ने फिर कहा।

राजा ने अपने-आपको संभाला। फिर वह धीरे से बोला, ''देवी मां! आप तो सब कुछ जानती हैं कि मैंने यह तप क्यों किया है। आप हर किसी के हृदय की बात को जानती हैं! फिर भी आपकी आज्ञा से मैं यह प्रार्थना करूंगा कि मैंने यह तपस्या संतान के लिए की है। मां! यह सच है कि वंशहीन व्यक्ति, चाहे वह राजा हो या रंक, उसका जीवन पापमय होता है। उसकी गति और मुक्ति किसी भी लोक में नहीं होती! मुझे आप संतान का वर दीजिए।''

देवी बोली, ''मुझे पहले ही तुम्हारे तप का अभिप्राय मालूम था, इसलिए मैंने परमपिता ब्रह्मा से अनुरोध कर दिया था। राजा, तुम्हारे संतान जरूर होगी।''

''मां की जय।''

''पर कन्या होगी— अत्यंत ही सुंदर, गुणवान और तेजस्वी कन्या!''

''धन्य हो, मां...धन्य हो!''

''राजन्! वह कन्या सती होगी और तुम्हारे कुल का गौरव बढ़ाएगी। जिस तरह पुत्र वंश के नाम को उजागर करता है, उसी तरह वह कन्या तुम्हारे नाम को सारी धरती पर फैलाएगी।''

सावित्री देवी अंतर्धान हो गई।

राजा के कानों में देवी के कहे हुए शब्द गूंजने लगे। वह प्रसन्न हो गया।

वह दौड़ा-दौड़ा राजमहल में आया। उसने यह शुभ समाचार सबको

सुनाया।

महल में भी प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। चारों ओर मंगल गीत गाए जाने लगे!

राजा अश्वपति की सबसे बड़ी रानी का नाम धर्मिष्ठा था। वह भी राजा की तरह सदा धर्म और कर्म का पालन करने वाली थी। उसका हृदय दया का सागर था।

एक दिन धर्मिष्ठा ने राजा को बताया, ''महाराज, एक शुभ संवाद है।''

''बोलो, रानी।''

''महाराज! मेरे पांव भारी हैं।''

''सच!''

रानी ने लाज के कारण पलकें झुका लीं।

''ओह रानी! आज मेरी प्रसन्नता की कोई सीमा नहीं है। मां सावित्री के वरदान का ही यह फल है।''

''हां महाराज, आप सच कहते हैं—यह सब उसी की कृपा का फल है।''

''भगवान अब जल्दी से जल्दी मुझे वह दिन दिखाए जब मैं एक संतान का पिता कहलाऊं और मेरी रानी उसकी जननी।''

''हां, महाराज।''

दोनों बड़ी आकुलता से उस दिन की प्रतीक्षा करने लगे।

राजा अश्वपति पूजा से निवृत्त होकर सूर्य को अर्घ्य दे रहे थे।

सूर्य भगवान अपने संपूर्ण तेज से चमक रहे थे। आकाश साफ और नीला था। हवा में सुगंध मिली हुई थी। शायद वह बगीचे की ओर से आ रही थी।

वे जैसे ही इस कार्य से निवृत्त हुए वैसे ही एक दासी ने आकर कहा, ''महाराज की जय हो! बधाई...''

''क्यों, क्या हुआ?'' राजा ने पूछा।

''महाराज, आपके पुत्री हुई है।''

''सच!''

''बहुत, बहुत बधाई!''

राजा ने अपने गले का हार उतारकर उस दासी को दे दिया।

दासी ने महाराज की एक बार फिर जयकार की।

राज ने स्वयं जाकर देखा—सचमुच कन्या अत्यंत रूपवती होने के साथ-साथ तेजस्वी थी।

महारानी धर्मिष्ठा ने राजा से कहा, ''यह कितना बड़ा सच है कि स्त्री मां बनकर बड़ा सुख और संतोष पाती है। किसी बात से वह ऐसा संतोष नहीं पाती। मैं अपने हृदय की प्रसन्नता को कह नहीं पा रही हूं, महाराज!''

''हां रानी, यह सब मां सावित्री की कृपा है।'' राजा ने कहा, ''मैं अभी राजगुरु व विद्वान पंडितों को बुलाकर नामकरण आदि का मुहूर्त निकलवाता हूं।''

''ठीक है, महाराज।''

महाराज ने शीघ्र ही महामंत्री को बुलाया। और उनसे अपने मन की बात कही।

थोड़ी ही देर में राजगुरु के अलावा बड़े-बड़े पंडित दरबार में आ गए।

उन्होंने शुभ मुहूर्त निकाला।

नामकरण के दिन हवन और पूजा की गई। ब्राह्मणों को भोजन कराया गया। गरीबों को उनकी जरूरतों के मुताबिक वस्तुएं बांटी गईं।

पंडितों ने इस कन्या को सावित्री का वरदान माना, इसलिए इसे सावित्री नाम दिया गया।

सावित्री दिन-प्रतिदिन बड़ी होने लगी।

बेटी को बड़ी होने में क्या देर लगती है! देखते ही देखते सावित्री ने वय प्राप्त किया। युवा होने पर उसका सौंदर्य खूब खिल गया। वह अप्सरा-सी लगने लगी।

एक दिन राजा-रानी बगीचे में टहल रहे थे। सावित्री भी अपनी सखियों के साथ खड़ी थी।

एक नटखट भंवरा सावित्री पर मंडराने लगा। सावित्री उसे बार-बार

हटाती, लेकिन वह भंवरा इतना ढीठ था कि बार-बार आकर सावित्री पर मंडराने लगता।

सावित्री ने अपनी खास सहेली वनिका से कहा, ''वनिका! तुम खड़ी-खड़ी क्या कर रही हो? इस भंवरे को हटाओ न!''

वनिका ने मजाक में कहा, ''अब यह भंवरा नहीं हटेगा, राजकुमारी-जी! यह भंवरा कह रहा है कि हमारी राजकुमारी जवान हो गई है।''

राजा और रानी ने यह बात सुन ली।

रानी ने कहा, ''महाराज! आपने कुछ सुना कि यह सखी क्या कह रही है।''

''हां रानी, हमारी बेटी अब युवा हो गई है।''

''युवा बेटी मां-बाप को सताती है कि अब मेरे हाथ पीले करो— भंवरे मंडराने लगे हैं; कांटे वस्त्र उलझाने लगे हैं और नींद कम आने लगी है।''

''हां रानी, हम शीघ्र ही इस पर सोचेंगे। यह सही है कि जो पिता अपनी पुत्री के योग्य होने पर अच्छे वर की खोज नहीं करता उसकी हर जगह निंदा होती है। रानी! हम जल्द से जल्द सावित्री के लिए एक योग्य वर की तलाश करेंगे।''

राजा ने थोड़ी देर सोचा। फिर कहा, ''अच्छा तो यह होगा कि हम सावित्री से ही पूछ लें— विवाह के बारे में उसकी क्या इच्छा है?''

''हां, यही ठीक रहेगा।'' रानी ने मुसकराते हुए कहा, ''समझदार बेटी और बेटे को यह अधिकार देना चाहिए। इसे ही महाराज निज की स्वतंत्रता कहते हैं।''

राजा ने जोर से पुकारा, ''सावित्री...बेटी सावित्री...!''

सावित्री ने जैसे ही पिता की पुकार सुनी वह लपककर पास आई।

यौवन-सरोवर के कमल खिल गए थे। अचानक पिता के पुकारने पर सावित्री को लगा कि अवश्य ही मेरे पिता ने मेरी सहेलियों व दासियों की बातें सुन ली हैं, अत: वह मारे शर्म के लाल हो गई थी।

उसके नयन अपने-आप ही झुक गए। वह अपने अंगूठे से दूब को कुरेदने लगी।

''क्या बात है, बेटी? इतनी चुप-चुप कैसे खड़ी हो गईं?'' रानी ने

उसके समीप आकर उसे अपने गले लगाया।

"यूं ही, पिताजी।"

"सुनो बेटी!" रानी ने स्नेह से कहा, "तुम्हारे पिताजी तुम से कुछ कहना चाहते हैं। ध्यान से सुनो।"

"कहिए, पिताजी।" सावित्री ने सिर झुकाए हुए कहा, "मैं आपकी बेटी हूं। आपकी हर बात को सुनना मेरा धर्म है। आपकी हर आज्ञा का पालन करना मेरा कर्तव्य है। आप जो चाहें, कहिए।"

राजा ने गंभीर स्वर में कहा, "अब तुम युवा हो गई हो, यानी कली से फूल। दूसरे शब्दों में विवाह के योग्य...हम चाहते हैं कि तुम्हारे लिए किसी योग्य वर की खोज करके हम अपने धर्म का पालन करें।"

"पिताजी, मैं भी आपकी हर आज्ञा मानकर अपने धर्म का पालन करूंगी।" सावित्री ने विनीत स्वर में कहा।

"तुम योग्य व समझदार हो, अतः इस विषय में हम तुम्हारी इच्छा की स्वतंत्रता चाहते हैं।" राजा ने कहा, "तुम्हें संकोच करना और डरना नहीं चाहिए। यदि तुम्हें कोई पुरुष पसंद हो तो हमें बताओ।"

सावित्री ने कहा, "पिताजी! मुझे आपने बहुत स्वतंत्रता दे रखी है पर जो कन्या मर्यादा के बाहर जाती है, वह अधर्म ही करती है। मर्यादा स्त्री का धर्म है। जो काम मां-बाप की सीमा में है, उसे भला मैं आपकी आज्ञा के बिना कैसे कर सकती हूं? मैं जानती हूं कि हमारे यहां इस तरह की स्वतंत्रता नहीं है।"

"मुझे तुमसे यही आशा थी, बेटी।" रानी ने स्नेह से कहा।

राजा ने कहा, "मैं चाहता हूं कि तुम अपना मनपसंद वर खुद ढूंढ़ो। मैं हर प्रकार से सक्षम बाप हूं। अपनी बेटी की हर इच्छा को मैं किसी भी सूरत में पूरी कर सकता हूं। तुम्हारी इच्छा भी पूरी करूंगा। तुम अपने लिए लड़के को पसंद करो। भगवान ने चाहा तो सब ठीक होगा।"

"जैसी आपकी आज्ञा।"

राजा और रानी चले गए।

दासियों व सखियों ने सावित्री को फिर घेर लिया। वे उससे हँसी-ठिठोली करने लगीं।

राजा ने दूसरे दिन दरबार में अपने प्रमुख मंत्रियों और वृद्ध ब्राह्मणों को इकट्ठा किया। उनको अपने मन की बात बताई।

अनुभवी महामंत्री ने कहा, "महाराज! यही सही तरीका है। स्त्री को कम से कम यह स्वतंत्रता तो मिलनी ही चाहिए कि वह अपना वर स्वयं निश्चित करे। स्वयंवर भी इसी स्वतंत्रता का एक प्रतीक है। महाराज, केवल राजा का पुत्र होने से ही वह योग्य हो, सभी कलाओं में पूर्ण हो, यही जरूरी नहीं। स्वयंवर में तो हम नरेश के नाम और राज्य का ही वर्णन करते हैं। उनके आचरण को तो हम नहीं जानते।"

"हां महामंत्री, सावित्री योग्य और समझदार है। हम चाहते हैं कि वह अपनी इच्छा से ही अपना वर चुने। आप इसके साथ विश्वासी सैनिक और सहेलियां भेज दीजिए—यह वर की खोज में यात्रा पर जाएगी।" राजा ने खुले मन से कहा।

राजगुरु ने उठकर कहा, "इनके साथ मेरी बेटी भी जाएगी। मेरी बेटी सुज्ञाना भी धर्मशास्त्र की पंडित है, वह सावित्री को धर्म की मर्यादा भी बताती रहेगी।"

"यह तो और अच्छा रहेगा।" रानी ने कहा, "जब कभी भी राजा के पांव गलत रास्ते पर जाते हैं, तब गुरु, मुनि और ऋषि ही उन्हें सही राह दिखाते हैं।"

महाराज ने कहा, "फिर सावित्री की यात्रा की तुरंत तैयारी की जाए।"

शीघ्र ही तैयारियां कर दी गईं।

जाने के पहले सावित्री ने राजा-रानी से आशीर्वाद लिया।

राजा ने उसके सिर पर हाथ रखकर कहा, "मां सावित्री तुम्हारी मनोकामना पूरी करे।"

रानी ने उसे गले लगाकर कहा, "मेरी बेटी को उसके मन को भाने वाला पति मिले।"

सावित्री रवाना हो गई।

सावित्री सारे आर्यावर्त में घूमी। अनेक नगरों में जाकर कितने ही राजकुमारों से मिली। पर उसे कोई अच्छा नहीं लगा। न जाने क्यों उसे जीवन का

ऐश्वर्य पसंद नहीं आया। महलों की दिखावटी तड़क-भड़क और अहंकार ने उसे प्रभावित नहीं किया।

एक राजकुमार ने उससे कहा, ''देवी! मैं उस कुल का राजकुमार हूं जिसने देवता और दैत्यों पर भी राज्य किया था!''

सावित्री मुसकराकर बोली, ''आप हर वस्तु को अधिकार में कर सकते हैं। आप पृथ्वी के लोगों को अपने हथियारों के बल से दास बना सकते हैं, पर अपने प्रेम से आपने कितने लोगों को दास बनाया है? आपने कितने लोगों के मन पर विजय पाई?''

राजकुमार चुप हो गया।

सावित्री ने कहा, ''आपको शायद यह पता नहीं है कि मेरे पिता नारी-स्वतंत्रता के हामी हैं। उन्होंने मुझे इसीलिए यह कार्य सौंपा है कि मैं किसी योग्य, उदार पुरुष की अर्धांगिनी बनकर रहूं। आपके अहंकार-भरे विचारों से लगता है कि आप मुझे दासी बनाकर रखेंगे।''

इस तरह सावित्री अनेक राजकुमारों और राजाओं से मिलती हुई एक पवित्र वन में पहुंची। वहां उसने एक ऋषि की तरह जीने वाले युवक को देखा। वह युवक चेहरे से तेजस्वी लग रहा था। उसके चेहरे की शालीनता बता रही थी कि वह किसी उच्च कुल का स्वामी है।

उसने अपने कंधे पर लकड़ियों का गट्ठर लाद रखा था।

वह बहुत ही धीरे-धीरे जा रहा था।

सामने से अचानक उसने रथों व घोड़ों को आते हुए देखा तो ठिठक गया।

उसने सोचा—'कहीं हमारा पुराना शत्रु तो नहीं आ गया है? ओह! यदि वह आ गया है तो अवश्य ही वह मेरे अंधे मां-बाप को सताएगा।'

उसने भगवान को याद किया—'प्रभु! चाहे मेरे प्राण ले लेना, पर मेरे मां-बाप को जरा भी कष्ट न पहुंचाना।'

तभी उसने देखा कि रथ पर एक सुंदर युवती सवार है।

इस पवित्र वन में यह युवती कौन हो सकती है? रथी, घुड़सवार और पैदल रक्षकों के साथ है यह युवती। जरूर यह कोई बड़े राजा की बेटी होगी।

सावित्री ने भी उस तेजस्वी युवक को देखा। उस युवक के चेहरे पर

एक सलोना खिंचाव था।

सावित्री उसे देखती रही। उसके मन में भी अजीब तरह का आकर्षण पैदा हो गया। मन में उस युवक के बारे में जानने की इच्छा हुई। वैसे विदुषी सावित्री ने इतना तो अनुमान लगा ही लिया कि यह कोई श्रेष्ठ युवक है एकदम कुलीन।

सावित्री ने रथ रोका। नीचे उतरी। बोली, ''क्या मैं जान सकती हूं कि आप कौन हैं?''

युवक ने शालीनता से कहा, ''अवश्य।''

''आपका नाम क्या है?''

''मेरा नाम सत्यवान है।''

''पिता का नाम?''

''राजा द्युमत्सेन।''

''इस घोर पवित्र वन में आप यह लकड़ियों का गट्ठर उठाकर कहां जा रहे हैं?''

''देवी! भाग्य के फेर निराले हैं। मनुष्य को सात जन्मों के कर्मों के फल भोगने पड़ते हैं। मेरे पिता शाल्व देश के राजा थे। अंधे होने से वे राज-काज भली भांति नहीं देख पाए। मैं तब छोटा और नादान था। इन सभी स्थितियों का फायदा उठाकर पड़ोसी देश के राजा ने आक्रमण कर दिया। उसने शाल्व देश की स्वतंत्रता छीन ली। हम अपने संकट के दिन यहां बिता रहे हैं। दुर्भाग्य से मेरे मां-बाप नेत्रहीन हैं, इसलिए मैं उनकी सेवा कर रहा हूं।''

''ओह! आप इस वय में ही इस घोर जंगल में रहकर जिस तरह का जीवन बिता रहे हैं, क्या उससे आपका मन उचाट नहीं होता?'' सावित्री ने गंभीर होकर पूछा।

''नहीं देवी, बिलकुल नहीं होता।'' सत्यवान ने कहा, ''मां-बाप की सेवा में जिसे आनंद नहीं आता, वह पुत्र नरक को जाता है। उसकी उन्नति कभी नहीं होती। वह यश के शिखर पर नहीं पहुंचता।''

''आप बड़े ही शालीन और विनम्र हैं।'' सावित्री ने झट से पूछा, ''इस कार्य में आपकी पत्नी अवश्य ही सहयोग करती होगी?''

सत्यवान मुसकराया। बोला, ''नहीं, देवी! मैं तो कुंवारा हूं। मां-बाप

''मातेश्वरी, आप ठीक कहती हैं, पर जिन्होंने पक्के इरादे कर लिए हैं, वे हर रास्ते पर चल सकते हैं। मैं तो सत्यवान से ही विवाह करूंगी। मैंने मन में उन्हें अपना पति मान लिया है।''

''जैसी तुम्हारी इच्छा।'' राजा ने कहा, ''कल मैं दरबार में इस विवाह के लिए मंत्रियों व पूजनीय ब्राह्मणों से विचार करूंगा।''

सावित्री ने कोई उत्तर नहीं दिया।

दूसरे दिन दरबार में राजगुरु, पंडित और मंत्रीगण उपस्थित थे।

राजा ने सारी बात बताकर कहा, ''मेरी बेटी सावित्री ने वनवासी राजकुमार सत्यवान को अपना वर चुना है।''

राजगुरु ने कहा, ''कोई बात नहीं! जिसके भाग्य में जो लिखा है, वही होता है। सावित्री का यह वर पहले से ही तय है!''

तभी द्वारपाल ने सिर झुकाकर कहा, ''महाराज की जय हो! देवर्षि नारद पधारे हैं।''

राजा ने चौंककर कहा, ''देवर्षि नारद और इस समय!''

राजा तुरंत सिंहासन से उतरा और भागकर दरवाजे पर गया।

राजा को देखते ही नारदजी ने मुसकराकर कहा, ''नारायण... नारायण!''

''देवर्षि को मेरा प्रणाम!'' राजा ने दंडवत् होकर नारदजी को प्रणाम किया।

''सुखी रहो, राजन्!''

''आइए, देवर्षि...आइए और मेरे दरबार की शोभा में चार चांद लगाइए।''

देवर्षि नारद राजा के पीछे-पीछे आते-आते अपना इकतारा बजाते हुए, नारायण...नारायण, करते जा रहे थे।

दरबार में उन्हें उचित आसन दिया गया।

महाराज की ओर देखकर नारदजी ने पूछा, ''राजन्! आज तो दरबार खचाखच भरा है। किस बात पर विचार हो रहा है?''

राजा ने सारी बात बताकर कहा, ''मेरी बेटी ने सत्यवान को अपना वर चुना है। वह उसे मन से वर भी चुकी है।''

''अच्छा!'' देवर्षि नारद ने सावित्री की ओर देखकर पूछा, ''क्यों बेटी, क्या मैं सच सुन रहा हूं?''

''हां देवर्षि।''

''नारायण...नारायण...''

''मुझे आशीर्वाद दीजिए कि मेरी मनोकामना पूरी हो, देवर्षि।'' सावित्री ने झुककर कहा।

''पर, बेटी!'' कहते-कहते रुक गए देवर्षि नारद।

''आप रुक क्यों गए, देवर्षि?'' सावित्री ने उन्हें गौर से देखा।

''बेटी! यह ठीक नहीं रहेगा।''

''क्यों, देवर्षि?''

''तुम्हें वर्तमान, भूत और भविष्य का पता नहीं है।'' देवर्षि नारद ने कहा, ''जो तीनों लोकों की लीला को जानता है, वह उस कड़वे सत्य को भी जानता है जो अज्ञात है।''

''महात्मन्! आप साफ-साफ क्यों नहीं कहते?'' सावित्री ने व्यग्रता से कहा।

''बेटी! मैं जानता हूं कि सत्यवान जैसा सच्चा, सेवाव्रती और शालीन दूसरा युवक पृथ्वी पर नहीं है। पर बेटी, तुम्हें एक बात का पता नहीं है! राजपुत्र सत्यवान का एक नाम चित्राश्व भी है। उसे बचपन से ही घोड़े प्यारे थे। वह मिट्टी के घोड़े बनाता था। वह कभी चित्र बनाता तो घोड़े का ही चित्र बनाता था।''

''क्या वह सावित्री के लिए योग्य नहीं है, भगवन्?'' राजा ने पूछा।

''है, और शत-प्रतिशत है। वह तेजस्वी, बुद्धिमान, वीर और बड़ा ही सहनशील है। राजन्, वह उदार, सुंदर और मनोहर भी है। वह अपने माता-पिता की बहुत सेवा करता है।''

राजा ने कहा, ''भगवन्! जब उसमें गुण ही गुण हैं तो वह सावित्री के योग्य क्यों नहीं?''

''राजन्! सत्यवान में शायद इतनी पूर्णता इसलिए है कि उसमें एक बड़ा भयंकर दोष है।''

''कौन-सा?''

''आज से एक साल के बाद ही सत्यवान की मृत्यु हो जाएगी!''

''क्या?'' सावित्री, राजा और रानी के मुख से एक साथ निकला।

सब उदास हो गए।

सावित्री ने कहा, ''क्या यह सच है?''

''हां, बेटी!'' देवर्षि नारद ने कहा, ''यह अटल सत्य है। यह किसी तरह टल भी नहीं सकता।''

सावित्री का चेहरा पीला पड़ गया। उसके मुंह से एक लंबी आह निकली, ''हे भगवान!''

राजा ने तुरंत कहा, ''फिर तो यह विवाह नहीं हो सकता।''

रानी बोली, ''सत्यवान से भी अधिक गुणी, दानी और सेवाव्रती और लोग मिल जाएंगे।''

सावित्री ने नारदजी की ओर देखकर कहा, ''नहीं, ऐसा नहीं होगा! मैं सावित्री हूं। मैंने अपने मन से जिसे एक बार अपना पति चुन लिया है, वही मेरा पति होगा। स्त्री अपना पति बार-बार नहीं चुनती...ऐसा एक बार ही होता है।''

''बेटी!'' रानी ने करुण स्वर में पुकारा।

सावित्री ने अपने नयनों में आंसू लाकर कहा, ''पूजनीय! आयु अथवा गुण-दोष के आधार पर सती नारियां अपने मन से तय किए पति को नहीं बदलतीं। यह छोटापन और स्वार्थ है।''

रानी बोली, ''बेटी! जरा सोचो, क्या जान-बूझकर कोई मां-बाप अपनी लाड़ली बेटी को कुएं में धकेल सकते हैं? यह जानकर भी कि तुम्हारे सुहाग की आयु केवल एक वर्ष है...''

''चाहे एक वर्ष हो या एक माह, मैं तो सत्यवान को ही अपना पति बनाऊंगी!''

नारद ने कहा, ''तुम धन्य हो, सावित्री! राजन्! सावित्री का निश्चय हिमालय की तरह अटल है, अतः उसे रोकना ठीक नहीं।''

राजा ने सिर झुकाकर कहा, ''जिनके निर्णय में भगवान् नारदजी की सहमति हो, उसे भला कौन टाल सकता है! भगवन्, ऐसा ही होगा।''

''बेटी, तुम्हारा कल्याण हो।'' नारदजी चले गए।

राजा भारी मन से बेटी की शादी की व्यवस्था करनें लगे।

राजा ने सोच-विचारकर यह तय किया कि विवाह वन में जाकर ही

करना पड़ेगा। सावित्री की भी यही इच्छा थी।

शीघ्र ही राजा ने शाल्व नरेश द्युमत्सेन को संदेश भिजवाया कि वे सत्यवान से अपनी लड़की का विवाह करने आ रहे हैं।

राजा अश्वपति ने विवाह की सारी चीजें इकट्ठी कीं। वह वृद्ध पंडितों, पुरोहितों को लेकर पवित्र वन की ओर चला। रानी भी साथ थी।

राजा ने बड़ी दूर अपना सार्थ रुकवा दिया। वह पैदल ही चला।

जब सत्यवान को यह मालूम हुआ कि उसका विवाह सावित्री से हो रहा है तो वह बहुत ही प्रसन्न हुआ।

शाल्व-नरेश के पास जाकर अश्वपति ने अपनी बेटी का निर्णय सुनाया, ''राजर्षि, मैं मद्रदेश का राजा हूं। मेरी बेटी आपके पुत्र से विवाह करेगी। यही उसका निर्णय है। उसने सत्यवान को जबसे देखा है तबसे उसने आपके बेटे को अपने मन से वर लिया है।''

द्युमत्सेन अंधे थे। फिर भी उन्होंने कहा, ''आप मद्र देश के नरेश हैं। आपकी कीर्ति और तप का चारों ओर बोलबाला है, पर महाराज! हम पति-पत्नी अंधे ठहरे। हमारे पास आपकी बेटी के सुख और सुविधाओं की थोड़ी भी व्यवस्था नहीं है। यह घोर वन है। जंगली जानवरों से भरा है। पग-पग पर कांटे हैं। आपकी बेटी क्या इतना कठिन जीवन जी पाएगी?''

''हां, राजर्षि! मेरी बेटी ने आप लोगों की सेवा के लिए ही तो यह निर्णय किया है!''

''हम अंधे हैं। हमारे सेवाभावी पुत्र को हमारी सेवा से जरा भी फुरसत नहीं मिलती है। यह भी संभव है कि वह आपकी बेटी का हृदय से मनोरंजन भी न कर सके।''

''राजर्षि!'' अश्वपति ने कहा, ''मेरी बेटी सावित्री यह सब जानती है।''

''जानने के बाद भी यह निर्णय?''

''हां राजर्षि! उसने काफी सोच-समझकर यह निर्णय लिया है।''

इस बार सत्यवान की मां ने कहा, ''तो ठीक है। पर महाराज, जो लड़की फूलों में पली है, जिसकी सेवा में सौ-सौ दासियां काम कर रही हैं, ऐसी लड़की हम वनवासियों के साथ कैसे रहेगी?''

उसके समीप आकर उसे अपने गले लगाया।

''यूं ही, पिताजी।''

''सुनो बेटी!'' रानी ने स्नेह से कहा, ''तुम्हारे पिताजी तुम से कुछ कहना चाहते हैं। ध्यान से सुनो।''

''कहिए, पिताजी।'' सावित्री ने सिर झुकाए हुए कहा, ''मैं आपकी बेटी हूं। आपकी हर बात को सुनना मेरा धर्म है। आपकी हर आज्ञा का पालन करना मेरा कर्तव्य है। आप जो चाहें, कहिए।''

राजा ने गंभीर स्वर में कहा, ''अब तुम युवा हो गई हो, यानी कली से फूल। दूसरे शब्दों में विवाह के योग्य...हम चाहते हैं कि तुम्हारे लिए किसी योग्य वर की खोज करके हम अपने धर्म का पालन करें।''

''पिताजी, मैं भी आपकी हर आज्ञा मानकर अपने धर्म का पालन करूंगी।'' सावित्री ने विनीत स्वर में कहा।

''तुम योग्य व समझदार हो, अत: इस विषय में हम तुम्हारी इच्छा की स्वतंत्रता चाहते हैं।'' राजा ने कहा, ''तुम्हें संकोच करना और डरना नहीं चाहिए। यदि तुम्हें कोई पुरुष पसंद हो तो हमें बताओ।''

सावित्री ने कहा, ''पिताजी! मुझे आपने बहुत स्वतंत्रता दे रखी है पर जो कन्या मर्यादा के बाहर जाती है, वह अधर्म ही करती है। मर्यादा स्त्री का धर्म है। जो काम मां-बाप की सीमा में है, उसे भला मैं आपकी आज्ञा के बिना कैसे कर सकती हूं? मैं जानती हूं कि हमारे यहां इस तरह की स्वतंत्रता नहीं है।''

''मुझे तुमसे यही आशा थी, बेटी।'' रानी ने स्नेह से कहा।

राजा ने कहा, ''मैं चाहता हूं कि तुम अपना मनपसंद वर खुद ढूंढ़ो। मैं हर प्रकार से सक्षम बाप हूं। अपनी बेटी की हर इच्छा को मैं किसी भी सूरत में पूरी कर सकता हूं। तुम्हारी इच्छा भी पूरी करूंगा। तुम अपने लिए लड़के को पसंद करो। भगवान ने चाहा तो सब ठीक होगा।''

''जैसी आपकी आज्ञा।''

राजा और रानी चले गए।

दासियों व सखियों ने सावित्री को फिर घेर लिया। वे उससे हँसी-ठिठोली करने लगीं।

राजा ने दूसरे दिन दरबार में अपने प्रमुख मंत्रियों और वृद्ध ब्राह्मणों को इकट्ठा किया। उनको अपने मन की बात बताई।

अनुभवी महामंत्री ने कहा, ''महाराज! यही सही तरीका है। स्त्री को कम से कम यह स्वतंत्रता तो मिलनी ही चाहिए कि वह अपना वर स्वयं निश्चित करे। स्वयंवर भी इसी स्वतंत्रता का एक प्रतीक है। महाराज, केवल राजा का पुत्र होने से ही वह योग्य हो, सभी कलाओं में पूर्ण हो, यही जरूरी नहीं। स्वयंवर में तो हम नरेश के नाम और राज्य का ही वर्णन करते हैं। उनके आचरण को तो हम नहीं जानते।''

''हां महामंत्री, सावित्री योग्य और समझदार है। हम चाहते हैं कि वह अपनी इच्छा से ही अपना वर चुने। आप इसके साथ विश्वासी सैनिक और सहेलियां भेज दीजिए—यह वर की खोज में यात्रा पर जाएगी।'' राजा ने खुले मन से कहा।

राजगुरु ने उठकर कहा, ''इनके साथ मेरी बेटी भी जाएगी। मेरी बेटी सुज्ञाना भी धर्मशास्त्र की पंडित है, वह सावित्री को धर्म की मर्यादा भी बताती रहेगी।''

''यह तो और अच्छा रहेगा।'' रानी ने कहा, ''जब कभी भी राजा के पांव गलत रास्ते पर जाते हैं, तब गुरु, मुनि और ऋषि ही उन्हें सही राह दिखाते हैं।''

महाराज ने कहा, ''फिर सावित्री की यात्रा की तुरंत तैयारी की जाए।''

शीघ्र ही तैयारियां कर दी गईं।

जाने के पहले सावित्री ने राजा-रानी से आशीर्वाद लिया।

राजा ने उसके सिर पर हाथ रखकर कहा, ''मां सावित्री तुम्हारी मनोकामना पूरी करे।''

रानी ने उसे गले लगाकर कहा, ''मेरी बेटी को उसके मन को भाने वाला पति मिले।''

सावित्री रवाना हो गई।

सावित्री सारे आर्यावर्त में घूमी। अनेक नगरों में जाकर कितने ही राजकुमारों से मिली। पर उसे कोई अच्छा नहीं लगा। न जाने क्यों उसे जीवन का

ऐश्वर्य पसंद नहीं आया। महलों की दिखावटी तड़क-भड़क और अहंकार ने उसे प्रभावित नहीं किया।

एक राजकुमार ने उससे कहा, "देवी! मैं उस कुल का राजकुमार हूं जिसने देवता और दैत्यों पर भी राज्य किया था!"

सावित्री मुसकराकर बोली, "आप हर वस्तु को अधिकार में कर सकते हैं। आप पृथ्वी के लोगों को अपने हथियारों के बल से दास बना सकते हैं, पर अपने प्रेम से आपने कितने लोगों को दास बनाया है? आपने कितने लोगों के मन पर विजय पाई?"

राजकुमार चुप हो गया।

सावित्री ने कहा, "आपको शायद यह पता नहीं है कि मेरे पिता नारी-स्वतंत्रता के हामी हैं। उन्होंने मुझे इसीलिए यह कार्य सौंपा है कि मैं किसी योग्य, उदार पुरुष की अर्धांगिनी बनकर रहूं। आपके अहंकार-भरे विचारों से लगता है कि आप मुझे दासी बनाकर रखेंगे।"

इस तरह सावित्री अनेक राजकुमारों और राजाओं से मिलती हुई एक पवित्र वन में पहुंची। वहां उसने एक ऋषि की तरह जीने वाले युवक को देखा। वह युवक चेहरे से तेजस्वी लग रहा था। उसके चेहरे की शालीनता बता रही थी कि वह किसी उच्च कुल का स्वामी है।

उसने अपने कंधे पर लकड़ियों का गट्ठर लाद रखा था।

वह बहुत ही धीरे-धीरे जा रहा था।

सामने से अचानक उसने रथों व घोड़ों को आते हुए देखा तो ठिठक गया।

उसने सोचा—'कहीं हमारा पुराना शत्रु तो नहीं आ गया है? ओह! यदि वह आ गया है तो अवश्य ही वह मेरे अंधे मां-बाप को सताएगा।'

उसने भगवान को याद किया—'प्रभु! चाहे मेरे प्राण ले लेना, पर मेरे मां-बाप को जरा भी कष्ट न पहुंचाना।'

तभी उसने देखा कि रथ पर एक सुंदर युवती सवार है।

इस पवित्र वन में यह युवती कौन हो सकती है? रथी, घुड़सवार और पैदल रक्षकों के साथ है यह युवती। जरूर यह कोई बड़े राजा की बेटी होगी।

सावित्री ने भी उस तेजस्वी युवक को देखा। उस युवक के चेहरे पर

एक सलोना खिंचाव था।

सावित्री उसे देखती रही। उसके मन में भी अजीब तरह का आकर्षण पैदा हो गया। मन में उस युवक के बारे में जानने की इच्छा हुई। वैसे विदुषी सावित्री ने इतना तो अनुमान लगा ही लिया कि यह कोई श्रेष्ठ युवक है एकदम कुलीन।

सावित्री ने रथ रोका। नीचे उतरी। बोली, ''क्या मैं जान सकती हूं कि आप कौन हैं?''

युवक ने शालीनता से कहा, ''अवश्य।''

''आपका नाम क्या है?''

''मेरा नाम सत्यवान है।''

''पिता का नाम?''

''राजा द्युमत्सेन।''

''इस घोर पवित्र वन में आप यह लकड़ियों का गट्ठर उठाकर कहां जा रहे हैं?''

''देवी! भाग्य के फेर निराले हैं। मनुष्य को सात जन्मों के कर्मों के फल भोगने पड़ते हैं। मेरे पिता शाल्व देश के राजा थे। अंधे होने से वे राज-काज भली भांति नहीं देख पाए। मैं तब छोटा और नादान था। इन सभी स्थितियों का फायदा उठाकर पड़ोसी देश के राजा ने आक्रमण कर दिया। उसने शाल्व देश की स्वतंत्रता छीन ली। हम अपने संकट के दिन यहां बिता रहे हैं। दुर्भाग्य से मेरे मां-बाप नेत्रहीन हैं, इसलिए मैं उनकी सेवा कर रहा हूं।''

''ओह! आप इस वय में ही इस घोर जंगल में रहकर जिस तरह का जीवन बिता रहे हैं, क्या उससे आपका मन उचाट नहीं होता?'' सावित्री ने गंभीर होकर पूछा।

''नहीं देवी, बिलकुल नहीं होता।'' सत्यवान ने कहा, ''मां-बाप की सेवा में जिसे आनंद नहीं आता, वह पुत्र नरक को जाता है। उसकी उन्नति कभी नहीं होती। वह यश के शिखर पर नहीं पहुंचता।''

''आप बड़े ही शालीन और विनम्र हैं।'' सावित्री ने झट से पूछा, ''इस कार्य में आपकी पत्नी अवश्य ही सहयोग करती होगी?''

सत्यवान मुसकराया। बोला, ''नहीं, देवी! मैं तो कुंवारा हूं। मां-बाप

की सेवा में इतना लीन हूं कि विवाह के बारे में कभी सोचा-समझा ही नहीं है...फिर यदि पत्नी मेरे अनुकूल नहीं हुई तो मेरे मां-बाप की सेवा में बाधा पड़ेगी।''

''आपके विचार बड़े ऊंचे हैं।''

सावित्री को यह जानकार बड़ी ही प्रसन्नता हुई कि सत्यवान कुंवारा है। उसने अपना परिचय दिया, ''मेरा नाम सावित्री है। मैं राजा अश्वपति की बेटी हूं। आपसे मैं बड़ी प्रभावित हुई। यह मेरा सौभाग्य है।''

उसने मन ही मन सोच लिया कि अंधे माता-पिता की इस तरह सेवा करने वाला व्यक्ति कभी दूसरों को दुःख नहीं दे सकता।

उसने रथ पर बैठते हुए कहा, ''आर्यपुत्र! मैं आपको प्रणाम करती हूं तथा माता-पिता की सेवा करने के लिए आपकी प्रशंसा करती हूं।''

सत्यवान ने गरदन हिलाकर कहा, ''मां-बाप की सेवा तो पुत्र का धर्म और कर्तव्य है। धर्म और कर्तव्य प्रशंसनीय कर्मों में नहीं आते।''

सावित्री उसे मुग्ध भाव से देखकर चल पड़ी।

सुज्ञाना ने भी उसके विचार का समर्थन किया।

सावित्री लौट आई।

उसके लौटने से राजा अश्वपति को बड़ी प्रसन्नता हुई।

सबसे पहले सावित्री को आराम करने के लिए कह दिया गया।

रात के भोजन के समय राजा-रानी ने सावित्री से पूछा, ''बेटी! तुम्हारी यात्रा का क्या फल रहा?''

सावित्री ने बताया, ''पूजनीय माताजी और पिताजी! मेरी यात्रा बहुत ही सफल रही। अनेक देशों का परिचय प्राप्त हुआ। अनेक जंगलों को देखा। सबसे बड़ी बात यह थी कि अनेक लोगों से मिलने पर मेरे अनुभव बढ़े तथा मानव के गुणों को पहचानने की क्षमता को बल मिला। पिताजी! न जाने क्यों प्राणी सब कुछ पाकर अहंकार का शिकार हो जाता है। किसी को अपने रूप का घमंड है तो किसी को अपने धन का। किसी को अपने पद का घमंड है तो किसी को अपनी शक्ति का। महाराज! आपने मुझे अपने वर का चुनाव करने की जो जिम्मेदारी सौंपी, वह बहुत उचित है, पर इससे मैं दुविधा में पड़ गई हूं!''

''पर तुमने कोई लड़का पसंद भी किया है— हमें तो यह बताओ।'' रानी ने कहा।

''हां, मां।''

''वह भाग्यशाली कौन है?'' मां ने पूछा।

''मातेश्वरी, वह वन में रहने वाला एक राजकुमार सत्यवान है।''

''साफ-साफ सब कुछ कहो।'' राजा ने अत्यंत विनम्रता से कहा।

''महाराज! शाल्व देश का राजा द्युमत्सेन बड़ा ही पराक्रमी और धर्म को मानने वाला राजा है। दैवयोग से वह अंधा हो गया! अंधा होने पर उसके राज-काज को संभालने वाला कोई नहीं रहा। उसका पुत्र छोटा और नादान था जो राज्य को नहीं चला सकता था। उसकी इस निर्बलता का पता पड़ोसी देश के राजा को लगा। वह महाराज द्युमत्सेन का पुराना शत्रु था। कई बार वह द्युमत्सेन से हार चुका था।

''इस बार उसकी लाचारी का उसने फायदा उठाया और उन पर सहसा आक्रमण बोल दिया। उसने शाल्व देश को रौंद डाला।

''अंधे राजा और रानी अपने एकमात्र बेटे सत्यवान को लेकर भाग गए।

''वे घूमते-घूमते पवित्र वन में आ गए, जहां वे अभी अपने संकट के दिन बिता रहे हैं। महाराज! उसी राजा का बेटा सत्यवान है। वह अब जवान है और उसके मुख की कांति दमकती रहती है। वह हर विद्या में निपुण है और बहुत ही सरल तथा मधुर स्वभाव का है। महाराज! मैंने सत्यवान को ही पसंद किया है।'' सावित्री यह कहते हुए शरमा गई। उसके नयन झुक गए!

''पर...'' रानी ने शंका प्रकट की।

''मातेश्वरी! यह सच है कि वे अभी वन में रहते हैं, पर हैं तो राजा के पुत्र! समय बदलते देर नहीं लगती! फिर मैं भी उसकी पत्नी बनकर सेवाधर्म का पालन करूंगी। सेवा— वह भी अंधे सास-ससुर की— मुक्ति का सच्चा मार्ग है।''

''जैसी तुम्हारी इच्छा, बेटी।'' रानी ने कहा, ''पर जो मखमली गद्दों पर चलते हैं, जो वाहन के नीचे कभी पांव नहीं रखते, वे कैसे कांटों से भरे रास्तों पर चलेंगे?''

''मातेश्वरी, आप ठीक कहती हैं, पर जिन्होंने पक्के इरादे कर लिए हैं, वे हर रास्ते पर चल सकते हैं। मैं तो सत्यवान से ही विवाह करूंगी। मैंने मन में उन्हें अपना पति मान लिया है।''

''जैसी तुम्हारी इच्छा।'' राजा ने कहा, ''कल मैं दरबार में इस विवाह के लिए मंत्रियों व पूजनीय ब्राह्मणों से विचार करूंगा।''

सावित्री ने कोई उत्तर नहीं दिया।

दूसरे दिन दरबार में राजगुरु, पंडित और मंत्रीगण उपस्थित थे।

राजा ने सारी बात बताकर कहा, ''मेरी बेटी सावित्री ने वनवासी राजकुमार सत्यवान को अपना वर चुना है।''

राजगुरु ने कहा, ''कोई बात नहीं! जिसके भाग्य में जो लिखा है, वही होता है। सावित्री का यह वर पहले से ही तय है!''

तभी द्वारपाल ने सिर झुकाकर कहा, ''महाराज की जय हो! देवर्षि नारद पधारे हैं।''

राजा ने चौंककर कहा, ''देवर्षि नारद और इस समय!''

राजा तुरंत सिंहासन से उतरा और भागकर दरवाजे पर गया।

राजा को देखते ही नारदजी ने मुसकराकर कहा, ''नारायण... नारायण!''

''देवर्षि को मेरा प्रणाम!'' राजा ने दंडवत् होकर नारदजी को प्रणाम किया।

''सुखी रहो, राजन्!''

''आइए, देवर्षि...आइए और मेरे दरबार की शोभा में चार चांद लगाइए।''

देवर्षि नारद राजा के पीछे-पीछे आते-आते अपना इकतारा बजाते हुए, नारायण...नारायण, करते जा रहे थे।

दरबार में उन्हें उचित आसन दिया गया।

महाराज की ओर देखकर नारदजी ने पूछा, ''राजन्! आज तो दरबार खचाखच भरा है। किस बात पर विचार हो रहा है?''

राजा ने सारी बात बताकर कहा, ''मेरी बेटी ने सत्यवान को अपना वर चुना है। वह उसे मन से वर भी चुकी है।''

''अच्छा!'' देवर्षि नारद ने सावित्री की ओर देखकर पूछा, ''क्यों बेटी, क्या मैं सच सुन रहा हूं?''

''हां देवर्षि।''

''नारायण...नारायण...''

''मुझे आशीर्वाद दीजिए कि मेरी मनोकामना पूरी हो, देवर्षि।'' सावित्री ने झुककर कहा।

''पर, बेटी!'' कहते-कहते रुक गए देवर्षि नारद।

''आप रुक क्यों गए, देवर्षि?'' सावित्री ने उन्हें गौर से देखा।

''बेटी! यह ठीक नहीं रहेगा।''

''क्यों, देवर्षि?''

''तुम्हें वर्तमान, भूत और भविष्य का पता नहीं है।'' देवर्षि नारद ने कहा, ''जो तीनों लोकों की लीला को जानता है, वह उस कड़वे सत्य को भी जानता है जो अज्ञात है।''

''महात्मन्! आप साफ-साफ क्यों नहीं कहते?'' सावित्री ने व्यग्रता से कहा।

''बेटी! मैं जानता हूं कि सत्यवान जैसा सच्चा, सेवाव्रती और शालीन दूसरा युवक पृथ्वी पर नहीं है। पर बेटी, तुम्हें एक बात का पता नहीं है! राजपुत्र सत्यवान का एक नाम चित्राश्व भी है। उसे बचपन से ही घोड़े प्यारे थे। वह मिट्टी के घोड़े बनाता था। वह कभी चित्र बनाता तो घोड़े का ही चित्र बनाता था।''

''क्या वह सावित्री के लिए योग्य नहीं है, भगवन्?'' राजा ने पूछा।

''है, और शत-प्रतिशत है। वह तेजस्वी, बुद्धिमान, वीर और बड़ा ही सहनशील है। राजन्, वह उदार, सुंदर और मनोहर भी है। वह अपने माता-पिता की बहुत सेवा करता है।''

राजा ने कहा, ''भगवन्! जब उसमें गुण ही गुण हैं तो वह सावित्री के योग्य क्यों नहीं?''

''राजन्! सत्यवान में शायद इतनी पूर्णता इसलिए है कि उसमें एक बड़ा भयंकर दोष है।''

''कौन-सा?''

''आज से एक साल के बाद ही सत्यवान की मृत्यु हो जाएगी!''

''क्या?'' सावित्री, राजा और रानी के मुख से एक साथ निकला। सब उदास हो गए।

सावित्री ने कहा, ''क्या यह सच है?''

''हां, बेटी!'' देवर्षि नारद ने कहा, ''यह अटल सत्य है। यह किसी तरह टल भी नहीं सकता।''

सावित्री का चेहरा पीला पड़ गया। उसके मुंह से एक लंबी आह निकली, ''हे भगवान!''

राजा ने तुरंत कहा, ''फिर तो यह विवाह नहीं हो सकता।''

रानी बोली, ''सत्यवान से भी अधिक गुणी, दानी और सेवाव्रती और लोग मिल जाएंगे।''

सावित्री ने नारदजी की ओर देखकर कहा, ''नहीं, ऐसा नहीं होगा! मैं सावित्री हूं। मैंने अपने मन से जिसे एक बार अपना पति चुन लिया है, वही मेरा पति होगा। स्त्री अपना पति बार-बार नहीं चुनती...ऐसा एक बार ही होता है।''

''बेटी!'' रानी ने करुण स्वर में पुकारा।

सावित्री ने अपने नयनों में आंसू लाकर कहा, ''पूजनीय! आयु अथवा गुण-दोष के आधार पर सती नारियां अपने मन से तय किए पति को नहीं बदलतीं। यह छोटापन और स्वार्थ है।''

रानी बोली, ''बेटी! जरा सोचो, क्या जान-बूझकर कोई मां-बाप अपनी लाड़ली बेटी को कुएं में धकेल सकते हैं? यह जानकर भी कि तुम्हारे सुहाग की आयु केवल एक वर्ष है...''

''चाहे एक वर्ष हो या एक माह, मैं तो सत्यवान को ही अपना पति बनाऊंगी!''

नारद ने कहा, ''तुम धन्य हो, सावित्री! राजन्! सावित्री का निश्चय हिमालय की तरह अटल है, अतः उसे रोकना ठीक नहीं।''

राजा ने सिर झुकाकर कहा, ''जिनके निर्णय में भगवान् नारदजी की सहमति हो, उसे भला कौन टाल सकता है! भगवन्, ऐसा ही होगा।''

''बेटी, तुम्हारा कल्याण हो।'' नारदजी चले गए।

राजा भारी मन से बेटी की शादी की व्यवस्था करनें लगे।

राजा ने सोच-विचारकर यह तय किया कि विवाह वन में जाकर ही

करना पड़ेगा। सावित्री की भी यही इच्छा थी।

शीघ्र ही राजा ने शाल्व नरेश द्युमत्सेन को संदेश भिजवाया कि वे सत्यवान से अपनी लड़की का विवाह करने आ रहे हैं।

राजा अश्वपति ने विवाह की सारी चीजें इकट्ठी कीं। वह वृद्ध पंडितों, पुरोहितों को लेकर पवित्र वन की ओर चला। रानी भी साथ थी।

राजा ने बड़ी दूर अपना सार्थ रुकवा दिया। वह पैदल ही चला।

जब सत्यवान को यह मालूम हुआ कि उसका विवाह सावित्री से हो रहा है तो वह बहुत ही प्रसन्न हुआ।

शाल्व-नरेश के पास जाकर अश्वपति ने अपनी बेटी का निर्णय सुनाया, ''राजर्षि, मैं मद्रदेश का राजा हूं। मेरी बेटी आपके पुत्र से विवाह करेगी। यही उसका निर्णय है। उसने सत्यवान को जबसे देखा है तबसे उसने आपके बेटे को अपने मन से वर लिया है।''

द्युमत्सेन अंधे थे। फिर भी उन्होंने कहा, ''आप मद्र देश के नरेश हैं। आपकी कीर्ति और तप का चारों ओर बोलबाला है, पर महाराज! हम पति-पत्नी अंधे ठहरे। हमारे पास आपकी बेटी के सुख और सुविधाओं की थोड़ी भी व्यवस्था नहीं है। यह घोर वन है। जंगली जानवरों से भरा है। पग-पग पर कांटे हैं। आपकी बेटी क्या इतना कठिन जीवन जी पाएगी?''

''हां, राजर्षि! मेरी बेटी ने आप लोगों की सेवा के लिए ही तो यह निर्णय किया है!''

''हम अंधे हैं। हमारे सेवाभावी पुत्र को हमारी सेवा से जरा भी फुरसत नहीं मिलती है। यह भी संभव है कि वह आपकी बेटी का हृदय से मनोरंजन भी न कर सके।''

''राजर्षि!'' अश्वपति ने कहा, ''मेरी बेटी सावित्री यह सब जानती है।''

''जानने के बाद भी यह निर्णय?''

''हां राजर्षि! उसने काफी सोच-समझकर यह निर्णय लिया है।''

इस बार सत्यवान की मां ने कहा, ''तो ठीक है। पर महाराज, जो लड़की फूलों में पली है, जिसकी सेवा में सौ-सौ दासियां काम कर रही हैं, ऐसी लड़की हम वनवासियों के साथ कैसे रहेगी?''

अश्वपति ने कहा, ''आप ठीक कहती हैं कि मेरी बेटी लाड़ली है। वह फूलों में पली है, पर महिषी, जो पक्का निर्णय कर लेते हैं, वे कोई चिंता नहीं करते? फिर मेरी बेटी सावित्री सहनशीलता की मूर्ति है।''

मालवा देश की कन्या अश्वपति की पत्नी ने कहा, ''बहनजी! यह भी सच है कि समय सदा एक-सा नहीं रहता। राजा से ऋषि हो गए आप कल वापस राजा भी बन सकते हैं।''

रानी ने यह कह तो दिया पर उसे सहसा नारदजी की बात याद आई कि सावित्री का सुहाग पूरे एक साल का भी नहीं है। जिसे केवल चंद माह पति का सुख भोगना है, उसके लिए तो फूल और कांटे बराबर हैं!

''वैसे जो भाग्य में लिखा है, वह तो होता ही है।'' राजर्षि ने कहा, ''भाग्य का लिखा कभी नहीं टलता।''

''हां राजर्षि! आप ठीक कहते हैं। भाग्य का लिखा, कभी नहीं टलता। आप अपने पुत्र सत्यवान को कहकर मेरी इच्छा पूरी कीजिए। मैं आपकी सारी स्थितियों से परिचित हूं। मेरी बेटी भी इस कठोर सच को जानती है, ऐसी स्थिति में यह विवाह होगा ही।''

सहसा अश्वपति की निगाह सत्यवान पर गई। उन्होंने कहा, ''बेटा! तुम्हारी इस विवाह में सहमति है कि नहीं? तुम्हें मेरी बेटी पत्नी के रूप में स्वीकार है कि नहीं?''

''राजन्! मैं सत्यवान अपनी इच्छा से कुछ नहीं कहता। पिता की आज्ञा ही मेरे लिए सब कुछ है! मेरे माता-पिता जो कुछ भी कहेंगे, मुझे वही स्वीकार है।''

सत्यवान ने हाथ जोड़ दिए।

''बेटा! ऐसे सुयोग्य राजा की बेटी को पत्नी के रूप में ग्रहण करो। यदि कन्या-पक्ष वाले स्वयं आ जाएं तो धर्म यही है कि उस बेटी के बाप का सम्मान करो। उस आई हुई लक्ष्मी को कभी भी न ठुकराओ।''

''जो आज्ञा, पिताजी!''

''महाराज अश्वपति, आप विवाह संपन्न कराइए।'' द्युमत्सेन ने कहा।

थोड़ी देर में जंगल में मंगल हो गया। वेद-मंत्रों से आकाश गूंजने लगा। वन के सारे जीव-जंतु ब्राह्मणों के स्वर में निकले मंत्रों को सुन-

सुनकर अपना कल्याण करने लगे।

विवाह हो गया।

सभी ने वर-वधू को आशीर्वाद दिया।

सावित्री बड़ी प्रसन्न थी।

राजा अश्वपति ने द्युमत्सेन से कहा, ''राजर्षि! मेरे एक ही संतान है। वह भी बेटी! यदि आपको कोई आपत्ति न हो तो मैं अपना सारा राज्य कन्यादान में दे सकता हूं।''

''नहीं, महाराज! हम क्षत्रिय हैं। क्षत्रिय भूमि का दान नहीं लेते। वे अपनी शक्ति से ही भूमि पर अधिकार करके उसका सुख लेते हैं। दान लेना ब्राह्मण का धर्म है।''

सत्यवान ने भी अपने पिता की बात का समर्थन किया, ''मेरे पिताजी ठीक कहते हैं, मेरे धर्मपिता! ससुर भी पिता होता है— धर्म का पिता! आप हमें अपने भाग्य पर छोड़कर जाइए। आपने अपनी बेटी को जान-बूझकर हम वनवासियों को सौंपा है, कोई चिंता न करें।''

सावित्री ने भी गर्व से कहा, ''पिताजी! आपकी बेटी ने सोच-समझकर ही यह किया है, अत: चिंता करना व्यर्थ है। अब मैं यहां रहकर अपने पतिव्रत धर्म का कठोर रूप से पालन करूंगी। मन, कर्म और वचन— तीनों से मैं पति और अपने सास-ससुर की सेवा करूंगी। अपने पति के हर दु:ख में अपना हिस्सा बटाऊंगी।''

राजा सावित्री को एकांत में ले गए।

रानी भी साथ चल पड़ी।

एक घने झाड़ के पीछे ले जाकर रानी सावित्री के चेहरे को देखती रही। सुहागिन के वेश में सावित्री बहुत ही सुंदर लग रही थी। एकाएक रानी रो पड़ी।

''क्या बात है, मां?''

''बेटी! एक तो तुमसे विदा लेते समय मेरा हृदय फटा जा रहा है, फिर एक वर्ष में ही तुम्हारे विधवा हो जाने की बात को सुनकर मेरा मन बस, छलनी हो रहा है।''

''बेचारे सत्यवान को क्या पता कि उसकी उम्र मात्र एक साल के लगभग ही बाकी रही है। बेटी! हम सब यह सोच-सोचकर दु:खी हैं।''

राजा ने अपनी आंखों के आंसू पोंछकर कहा।

''पिताजी! भाग्य का लिखा अटल है। मैं एक साल में ही अपने पति, सास और ससुर की सेवा करके अपने जीवन को सफल कर लूंगी। एक साल बहुत होता है एक सार्थक जीवन जीने के लिए। मैं अपना एक-एक पल उनकी सेवा में लगा दूंगी। एक साल में ही सारी उम्र का आनंद प्राप्त कर लूंगी।''

''भगवान तुम्हारा संकट टाले।'' रानी ने सावित्री को हृदय से लगा लिया।

थोड़ी ही देर में पवित्र वन फिर अपनी पुरानी स्थिति में आ गया।

एकदम सूना-सूना।

एक कुटिया में आज फूलों की गंध थी। दूसरी में सत्यवान के मां-बाप सो गए थे।

सावित्री अभी-अभी सास के पांव दबाकर आई थी। उसका चेहरा विवाह के हवन के ओज से दपदपा रहा था।

सत्यवान कुटिया के बाहर एक चट्टान पर बैठा था। पास ही नदी बह रही थी। वह इतनी शांत थी जैसे वह भी नींद में सो गई है। चांदनी जगमगा रही थी।

सावित्री ने सत्यवान के पास जाकर उसे चौंका दिया। सत्यवान सावित्री को मुग्ध भाव से देखने लगा।

''क्या देख रहे हैं, नाथ?''

''देख रहा हूं कि इस जंगल में मंगल कराने वाली तुम...कितनी सुंदर हो! तुम्हारे अंग-अंग से मद-सा झर रहा है...सावित्री!''

''हां, नाथ।'' सावित्री उसके चरणों में बैठ गई।

''तुमने एक वनवासी से विवाह क्यों किया?''

''नाथ! मैंने आपको अपना वर खूब सोच-समझकर चुना है। मैं आपकी सरलता, शालीनता और करुणा से मुग्ध हो गई थी...सच तो यह है कि आपको मैंने जैसे ही देखा, वैसे ही मेरे मन में आपको अपना पति बनाने की इच्छा जाग गई। प्रेम के झरने फूट पड़े। हृदय में आपकी छवि अंकित हो गई।''

''पर तुम्हें तो एक से एक ऐश्वर्यशाली राजा एवं राजकुमार मिल सकते थे?'' सत्यवान ने कहा।

''पर मुझे सत्यवान कैसे मिलता?''

''ओह, सावित्री!''

''हां स्वामी!'' सावित्री ने सत्यवान का हाथ अपने हाथ में लेकर कहा।

इस बार सत्यवान ने सावित्री को ध्यान से देखा तो चौंक पड़ा, ''अरे! तुमने अपने गहने और राजसी वस्त्र कहां रख दिए?''

''संदूक में।''

''क्यों?''

''जिसका पति ऋषि का जीवन जीता हो, उसकी पत्नी भला कैसे राजसी वस्त्र पहन सकती है!''

''ओह, सावित्री...चलो, कुटिया में चलें।''

दोनों कुटिया में चले गए।

सावित्री को देवर्षि नारद की बात याद थी। वह जानती थी कि उसके सुहाग और सुख का पूरा एक साल भी नहीं है। धीरे-धीरे, एक-एक दिन और एक-एक रात उसके साल को छोटा कर रही है। सावित्री इससे विचलित जरूर होती थी। परंतु उसने दृढ़ निश्चय कर लिया कि वह पूरी निष्ठा से पतिव्रता के धर्म का पालन करेगी और होनी को अपने पतिव्रत धर्म के बल से बदल देने की कोशिश करेगी।

रात-दिन पतिभक्ति और सास-ससुर की सेवा!

सावित्री सादगी से जीती थी। हिंसा से दूर रहती थी। रात-दिन पतिसेवा करती। समय मिलने पर वह तपस्या करती थी।

जैसे-जैसे दिन बीत रहे थे, वैसे-वैसे उसे देवर्षि नारद की कठोर भविष्यवाणी विचलित कर रही थी।

वह पति के साथ अधिक रहने लगी। कभी-कभी तो वह बहुत विचलित और निर्बल हो जाती। उसकी आंखों से अश्रुधारा बहने लग जाती थी।

एक दिन सत्यवान ने पूछा, ''सावित्री! इधर तुम बहुत उदास लग

उसने अपने पति सत्यवान के दर्शन किए।

सत्यवान ने सावित्री के सिर पर हाथ रखकर कहा, ''तुम्हारा व्रत पूरा हुआ। यह व्रत बहुत कठिन था। तुम्हारी मनोकामना अवश्य ही पूरी होगी।''

''स्वामी! आप अत्यंत ही सेवाव्रती हैं। माता-पिता की सेवा में बेजोड़ हैं। ऐसे दयालु और धर्मपालक का आशीष कभी भी खाली नहीं जाएगा!''

इसके बाद सावित्री अपने सास-ससुर के पास गई। उनका आशीर्वाद लिया। फिर उसने पवित्र वन में रहने वाले ऋषि-मुनियों को प्रणाम करके उनका भी आशीर्वाद प्राप्त किया।

सभी ने उसे अखंड सौभाग्यवती होने का आशीर्वाद दिया।

सावित्री ने सबके आशीर्वाद को हाथ जोड़कर ग्रहण किया। उसने हर बार आशीर्वाद पाने के बाद सोचा—ऐसा ही हो!

सबके चले जाने के बाद ससुर ने कहा, ''तुम्हारा व्रत पूरा हुआ, पुत्री, अब तुम भोजन कर लो।''

''पिताजी! मैं सूर्य के डूबने पर ही भोजन करूंगी। यही मेरा निश्चय है।''

सहसा उसे देवर्षि नारद की बात ने उदास कर दिया। उसके भीतर कांटे चुभने लगे। वह पीड़ा से भर-भर आई—हाय! आज उसके पति के जीवन का अंतिम दिन है! आज उसका सुहाग उजड़ जाएगा। उसके जीवन का सूर्य डूब जाएगा। उसकी रात में कभी भी चंद्रमा नहीं उगेगा। जिसका पति मर जाता है, वह तो दीपक का प्रकाश भी नहीं देखती। प्रभु! यह कैसा न्याय है? क्या इतने महात्माओं के आशीर्वाद का कोई फल नहीं निकलेगा?

वह दुःख में पागल-सी हो गई।

तभी उसने अपने पति को लकड़ी काटने वाला 'फरसा' लेकर जाते देखा।

सावित्री ने झट से पूछा, ''कहां जा रहे हैं, आप?''

''मैं लकड़ी काटकर लाता हूं ताकि रात का भोजन आसानी से बन सके।''

''आज मैं भी आपके साथ चलती हूं।''

''क्यों?''

''ऐसे ही! आज मेरी इच्छा आपको छोड़ने की नहीं हो रही है।''—सावित्री ने कहा।

''नहीं, सावित्री! तुमने तीन दिन और तीन रात तक व्रत रखा है। बहुत कमजोर हो। ऐसी दशा में तुम्हारा चलना ठीक नहीं है।''

सावित्री ने कहा, ''मुझमें जरा भी थकान नहीं है। क्या आप मेरी यह छोटी-सी इच्छा पूरी नहीं करेंगे!''

''मुझे तो कोई भी आपत्ति नहीं है, पर मेरे साथ चलने के लिए तुम्हें माता-पिता से आज्ञा लेनी पड़ेगी।''

सत्यवान की बात सुनकर सावित्री अपने सास-ससुर के पास गई। उन्हें प्रणाम करके कहा, ''आपके पुत्र लकड़ी काटने जा रहे हैं। मैं भी इनके साथ जाना चाहती हूं।''

''पर आज ऐसा क्यों?''

''न जाने क्यों मेरा मन आज एक पल के लिए भी इनका विछोह सहने को तैयार नहीं है। आप मुझे आज्ञा दीजिए।''

सत्यवान की मां ने मुसकराकर कहा, ''अच्छा...अच्छा, हम तुम्हारी इतनी इच्छा तो अवश्य पूरी करेंगे। जाओ, बेटी।''

''हम तुम्हें मना नहीं करेंगे। तुमने यहां आने के बाद पहली बार यह इच्छा प्रकट की है। कभी अपने पति के साथ गईं भी नहीं। जाओ बेटी, जाओ!''

द्युमत्सेन ने भी सावित्री को आज्ञा दे दी।

सावित्री ने पहली बार वन को भीतर से देखा था—हरी-भरी घाटियां। तरह-तरह के फूल। कोयलों की मधुर तान सुनाई पड़ती थी। एक ओर मोर नाच रहे थे। वे बहुत प्यारे लग रहे थे।

सावित्री ने सत्यवान का हाथ पकड़कर कहा, ''नाथ! यह वन कितना सुंदर है! और इन पशु-पक्षियों ने तो इसकी सुंदरता को बहुत ही बढ़ा दिया है।''

''हां सावित्री! वन की शोभा तो जंगली जानवर, रंग-बिरंगे फूल,

पेड़-पौधे और मन को मोहने वाले ये पक्षी ही होते हैं। इसीलिए इन सबकी रक्षा करना मनुष्य का धर्म है।''

सावित्री ने अपने भीतर की चिंता को दबाकर कहा, ''और फलों की तो महिमा ही न्यारी है! यहां कितने स्वादिष्ट फल भी हैं।''

''तुम इनसे टोकरी भर लो।''

दोनों ने फलों को तोड़कर टोकरी भर ली।

सत्यवान ने कहा, ''अब तुम कुटिया पर जाओ। उस पहाड़ी के पीछे सूखे पेड़ हैं। मुझे वहीं जाकर लकड़ियां काटनी होंगी। हरा पेड़ काटना पाप कहा जाता है।''

''नहीं, मैं भी आपके साथ चलूंगी।''

''अरे! वह तो घोर विकट वन है!''

''तो भी मैं साथ ही चलूंगी।''

''चलो।''

दोनों साथ-साथ चले।

वहां पहुंचकर सत्यवान ने लकड़ी काटना शुरू कर दिया।

लकड़ी काटते-काटते सत्यवान को पसीना आ गया। उसके सिर में सहसा भयंकर दर्द होने लगा। उसे लगा कि जैसे उसके शरीर में दम ही नहीं है। वह पीड़ा से तड़पने लगा।

वह सावित्री के पास आया। उसके उतरे हुए मुंह को देखकर सावित्री ने कहा, ''क्या बात है, स्वामी?''

सत्यवान ने बुझे हुए स्वर में कहा, ''सावित्री! मेरे सिर में भयंकर पीड़ा हो रही है। हृदय में भी शूल-सा चुभ रहा है। सभी अंग मानो टूट रहे हैं।''

सावित्री का दिल बैठ गया। उसने समझ लिया कि मेरे पति की अंतिम घड़ी आ रही है!

सत्यवान ने उसकी गोद में अपना सिर रख दिया। वह धीमे-धीमे बोला, ''सावित्री! सिर में तो जैसे कोई भालों की चोटें मार रहा है!''

''आप साहस रखें, मैं आपका सिर दबाती हूं। भगवान सब अच्छा ही करेंगे।''

''ओह...हाय...सिर फटा जा रहा है!''

सावित्री ने धैर्य नहीं छोड़ा। वह बार-बार देवी मां सावित्री से प्रार्थना कर रही थी, ''मां, मेरे सुहाग की रक्षा करना।''

मृत्यु का समय टलता नहीं!

उसी पल भयंकर गर्जना हुई।

सावित्री ने सत्यवान को पकड़ लिया।

लाल वस्त्र, सिर पर मुकुट, काला रंग, अंगारों की तरह आंखें! हाथ में लंबी रस्सी लिए एक डरावना तेजवान पुरुष खड़ा था।

वह सत्यवान को घूर-घूरकर देख रहा था।

सावित्री ने अपनी पतिभक्ति के बल पर उस भयंकर आकृति को देख लिया। पति को छोड़कर वह उसके पास पहुंची। बोली, ''मैं समझती हूं कि आप कोई देवता हैं...देवेश! आप कौन हैं?''

''देवी! तुम महान् पतिव्रता और तपस्विनी हो। सदा सत्य पर चलती हो, ऐसी स्थिति में मैं अपने को तुमसे छुपा नहीं सकता। देवी! मैं स्वयं यम हूं।''

''मैं धर्मराज यम को प्रणाम करती हूं।''

''तुम्हारे पति सत्यवान की आयु खत्म हो गई है। मैं उसे यमलोक ले जाने आया हूं। तुम मुझे इसे ले जाने दो।''

''भगवन्! मैंने तो सुना था कि मनुष्य को लेने के लिए आपके दूत आते हैं, फिर आप स्वयं क्यों आए?''

''सावित्री! तुम्हारा पति सत्यवान सच्चा धर्मात्मा और पिता-माता का परम भक्त है अतः मैं स्वयं इसे लेने आया हूं। यह मर गया है।''

यमराज सत्यवान के प्राण को बांधकर दक्षिण की ओर चले। पतिव्रता सावित्री ने उनका पीछा किया।

यमराज ने कहा, ''सावित्री! तुम कहां चल रही हो? तुम लौटकर अपने पति के शरीर का दाह-संस्कार करो, ताकि उसकी मुक्ति हो।''

''नहीं धर्मराज! मैं तो वहीं जाऊंगी जहां मेरा पति जाएगा— यही तो पतिव्रत धर्म है। मैं अपनी सारी भक्ति और शक्ति के बल से अपने पति के साथ चलूंगी। मुझे कोई रोक नहीं सकता।''

''मान जाओ, सावित्री!''

''भगवन्! बुद्धिमानों ने कहा है कि कोई सात पग भी साथ चल ले,

तब वह मित्र हो जाता है! मैं आपके साथ अनेक पग चल चुकी। अब उसी मित्रता के आधार पर मैं कुछ कहना चाहती हूं।''

''सावित्री! मैं तुम्हारी वाणी से प्रसन्न हूं। तुम सत्यवान के प्राणों के सिवाय कोई वर मांग सकती हो! फिर तुम्हें लौट जाना पड़ेगा।''

''तो, धर्मराज, राज्य से निकाल दिए जाने पर मेरे अंधे सास-ससुर वनवास भोग रहे हैं। आप वर दें कि वे अपनी आंखों की ज्योति वापस प्राप्त करें।''

''सावित्री, ऐसा ही होगा। तुम्हारे सास-ससुर आज से देखने लगेंगे! अरे! सावित्री, तुम थक गई हो। अब वापस लौट जाओ।''

''नहीं देवेश, जहां मेरा पति है, वहीं मेरी गति है! मैं आपका साथ नहीं छोड़ूंगी। मेरी बात सुनिए—मैंने सज्जन पुरुष का साथ किया है। सज्जन पुरुषों का साथ सदा ही फलदायक होता है। आप सज्जन हैं, क्या आपके साथ का मुझे फल नहीं मिलेगा?''

''तुम्हारी वाणी बहुत ही मोहक है, पर सावित्री, अपने पति के प्राणों के अलावा तुम फिर कोई वर मांग लो।''

''मेरे श्वसुर का राज्य उन्हें वापस मिल जाए।''

''ऐसा ही होगा। अब तुम चली जाओ।''

''नहीं, मैं आपके साथ चलूंगी। आप सज्जन हैं। आपकी शरण में यदि शत्रु भी आ जाए तो आप उस पर कृपा करते हैं।''

''तुम्हारी वाणी अत्यंत मधुर है। मांगो, सत्यवान के प्राणों के अलावा कोई और भी वर मांगो, सावित्री!''

''मेरे पिता संतानहीन हैं, उन्हें सौ पुत्र दीजिए—मैं यह तीसरा वरदान मांगती हूं।''

''ऐसा ही होगा। तुम्हारे पिता के सौ पुत्र होंगे, सावित्री! अब तो लौट जाओ। तुम मृत्युलोक से बहुत दूर चली आई हो!''

सावित्री ने सिर हिलाकर कहा, ''नहीं, कदापि नहीं। एक पतिव्रता के लिए पति के निकट रहने से बड़ा कोई धर्म नहीं है। मेरे पति आपके साथ हैं...देवेश! आप भगवान सूर्य के प्रतापी पुत्र हैं। आप सबके साथ सही न्याय करते हैं, इसीलिए आप धर्मराज कहलाते हैं। मैंने तो आपको मित्र माना है, सज्जन मित्र! आप पर मेरा अखंड विश्वास है!''

''अद्भुत वाणी है तुम्हारी, सावित्री! मांगो, सत्यवान के प्राणों के अलावा तुम जो भी वर मांगोगी, वह दूंगा। सुनो, यह चौथा वर मांगकर तुम लौट जाओ।''

''महाराज! सत्यवान से मेरे सौ पुत्र हों! यही मेरा चौथा वर है।''

''ऐसा ही होगा। अब तो लौट जाओ, देवी! तुम बहुत दूर चली आई हो!''

''नहीं महाराज! आपने मुझे सौ पुत्रों का वरदान दिया है, पर भला देवेश, बिना पति के कोई पत्नी कैसे पुत्र पैदा करेगी! सोचिए धर्मराज मेरे पति को तो आप स्वयं ले जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में मैं मां कैसे बनूंगी... और आपके वरदान की रक्षा कैसे होगी?''

धर्मराज ने एक आह भरी। बोले, ''ओह! सावित्री! तुमने अपनी वाणी की चतुराई से हमें भी हरा दिया। जाओ, ऐसा ही होगा...तुम्हारा पति तत्काल जीवित हो जाएगा।''

''धर्मराज! मैं आपको बार-बार प्रणाम करती हूं। आपकी कृपा से मुझे मेरा सुहाग मिल गया!''

''हां, सावित्री! तुम्हारे कारण ही तुम्हारा पति जीवित हुआ है। अब वह सदा स्वस्थ रहेगा। तुम्हारे साथ चार सौ साल तक जीएगा। जाओ, पुत्री! अब तुम जाओ।''

सावित्री लौट आई!

उसने अपने पति के सिर को उठाकर ज्योंही गोद में रखा त्योंही उसका पति ऐसे उठ बैठा जैसे वह गहरी नींद से जगा हो।

उसने सावित्री से कहा, ''मैं बहुत सोया! कितनी देर हो गई है? माता-पिता चिंता करते होंगे।''

''इतनी गहरी नींद से जगाना मैंने ठीक नहीं समझा। आपके सिर में भयंकर पीड़ा थी न?''

''ओह! मैंने सपने में एक भयंकर काला पुरुष देखा...जल्दी घर चलो, मेरे मां-बाप मेरे बिना व्याकुल हो रहे होंगे।''

''मैंने यदि सचमुच पति की भक्ति की है तो मेरे सास-ससुर का आज की रात कुछ भी अनिष्ट न हो। वे पूर्ण स्वस्थ रहें।''

वे सारी रात वन में भटकते रहे। सुबह जब वे अपने मां-बाप के

पास पहुंचे तो वे दोनों बड़े ही व्याकुल थे। पुत्र से मिलकर वे रो पड़े। उन्होंने कहा, ''अब हम अच्छी तरह देख सकते हैं। ओह! हमारी बहू सावित्री तो सचमुच लक्ष्मी है!''

इसी समय गौतम वहां आ गए। गौतम ने कहा, ''सावित्री! कल क्या-क्या घटा, वह सब तुम अपने सास-ससुर और पति को बताओ।''

''जो आज्ञा, विप्रवर!'' सावित्री ने कहा, ''नारदजी ने मुझे बताया था कि मेरे पति की मृत्यु साल-भर के बाद हो जाएगी। कल आखिरी दिन था। धर्मराज स्वयं इन्हें लेने के लिए आए। मैंने उनका पीछा किया। उन्होंने मुझे पांच वर दिए।''

सावित्री ने एक-एक वर का ब्योरा दिया।

सबने सावित्री की प्रशंसा की और उसे आशीर्वाद दिया।

समय बदलते देर नहीं लगी—राजा द्युमत्सेन को अपना राज्य वापस मिल गया। उसका शत्रु राजा अपने मंत्री के हाथों मारा गया, तब उसकी सेना भाग गई।

द्युमत्सेन ने अपना राज्य पाया।

अश्वपति के भी सौ पुत्र हुए।

सावित्री की अपार निष्ठा, पति-भक्ति एवं नैतिक साहस के कारण दोनों कुलों का कल्याण हो गया।

शकुंतला

राजर्षि विश्वामित्र अत्यंत ही तेजस्वी तपस्वी थे। उनके चमत्कारों और सिद्धियों से सारा संसार चकित था।

एक बार वे वन में घोर तपस्या कर रहे थे। उनकी तपस्या को देखकर देवराज इंद्र भयभीत हो गए।

इंद्रदेव सदा ऐसा ही समझते थे कि पृथ्वी पर जो भी तपस्या होती है वह उनका स्वर्ग का सिंहासन छीनने के लिए होती है।

देवराज इंद्र ने सोचा कि कोई ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे महर्षि विश्वामित्र की तपस्या भंग हो जाए।

लंबे समय तक सोचने-विचारने के पश्चात् इंद्र ने अपनी विशेष अप्सरा मेनका को बुलाया।

मेनका अद्वितीय सुंदरी थी। उसे देखकर देव-दानव, यक्ष-किन्नर, सबके सब प्राणी मुग्ध हो जाते थे।

मेनका ने हाथ जोड़कर कहा, ''क्या आज्ञा है, देवराज?''

''मेनका! हम पर भीषण संकट आ पड़ा है। हमारा सिंहासन डोलने वाला है।''

''महाराज!'' मेनका ने विनम्र स्वर में कहा, ''मैं आपके संकट-निवारण के लिए अपने प्राण का भी बलिदान कर सकती हूं। हमारा अस्तित्व तो आपके साथ ही है।''

''मुझे तुमसे यही आशा थी।''

''कहिए महाराज, मुझे क्या आज्ञा है?''

भगवान् इंद्र ने मेनका की ओर देखते हुए कहा, ''मेनका! महर्षि विश्वामित्र घोर तपस्या कर रहे हैं। वे तपस्या क्यों कर रहे हैं—इसका कारण मैं जानता हूं। वे अपनी तपस्या से ऐसी सिद्धि प्राप्त करना चाहते

हैं जिससे वे हमारे स्वर्ग की सत्ता हथिया सकें।''

''ओह!'' मेनका ने एक आह छोड़ी।

''इस विपत्ति से हमारा सिंहासन बचाने के लिए तुम्हें हमारी सहायता करनी होगी।''

मेनका ने इंद्र की चरण-धूलि लेकर कहा, ''मेरे स्वामी! आप मेरे प्रति 'सहायता' शब्द का प्रयोग करके मुझे लज्जित मत कीजिए...मैं तो आपकी दासी हूं। मुझे आज्ञा दीजिए।''

इंद्र ने प्रसन्नता प्रकट करके कहा, ''मेनका! तुम तीन लोकों में सबसे सुंदर हो। तुम्हारे यौवन के कुसुमों की गंध कठोर से कठोर तपस्या को खंडित करने की क्षमता रखती है। तुम्हारी अनुपम शास्त्रीय नृत्य-कला सम्मोहन का जादू बिखेर सकती है। तुम्हारे कंठ-स्वर से निकली राग-रागिनियां किसी भी तपस्वी की समाधि भंग कर सकती हैं। मैं चाहता हूं कि तुम पृथ्वी-लोक में जाओ और विश्वामित्र की तपस्या को भंग करके हमें संकट से उबारो।''

मेनका ने सिर झुकाकर कहा, ''जो आज्ञा, प्रभु!''

मेनका स्वजनों-परिजनों से विदा लेकर विमान द्वारा धरती पर उस जगह आ गई, जहां सुरम्य वन में महर्षि विश्वामित्र अखंड तपस्या कर रहे थे।

वह स्थान दर्शनीय था। मेनका ने सबसे पहले सारे वन का निरीक्षण किया। फिर उसने कामदेव का स्मरण किया—'हे अनंग! आप अपनी शक्ति से इस वन के चप्पे-चप्पे में अलौकिक प्रकृति की छटा और मद भर दें!'

थोड़ी ही देर में वन पर वसंत-सा छा गया और वह स्थल मिलन-स्थल-सा बन गया।

मेनका ने अपने प्रभाव से महर्षि विश्वामित्र की तपोभूमि के आगे सुगंधित फूलों की एक चौकी बनाई। फिर वह नृत्य-गीत से विश्वामित्र के तप को भंग करने के लिए तरह-तरह के प्रयास करने लगी।

अंत में मेनका सफल हुई।

विश्वामित्र की तपस्या भंग हो गई।

उन्होंने अपनी आंखें खोलीं तो सामने सौंदर्य की प्रतिमा को पाकर

महर्षि उस पर मुग्ध हो गए। त्याग, तप और ब्रह्मचर्य की दीवारें ढह गईं।
वे मेनका के प्रेम-राग में डूब गए।

''मेनका!''

''क्या है, महर्षि?''

''समय जाते पता ही नहीं चलता।''

''हां, महर्षि!''

''मैं तुम्हारे प्रेम में पागल हो गया। अपना तप, धर्म और नैतिकता सब कुछ छोड़कर मैं तुम्हारे रूप के सागर में आकंठ डूब गया।''

मेनका ने मुसकराकर कहा, ''महाराज! आपको एक शुभ समाचार सुनाऊं?''

''सुनाओ।''

मेनका लज्जा से लाल हो गई। कुछ सहमकर बोली, ''मैं आपकी संतान की मां बनने वाली हूं।''

महर्षि विश्वामित्र को लगा कि एकाएक कोई चट्टान का टुकड़ा उनके सिर पर आ गिरा है। आंखें विस्फारित हो गईं। तन में जड़ता आ गई।

कुछ देर उनसे बोला नहीं गया। बड़ी कठिनता से वे बोले, ''क्या कह रही हो, मेनका?''

''ऋषिवर! आप तो लोक-परलोक की सारी बातें जानते हैं। आप अपनी दिव्य दृष्टि से पृथ्वी पर जल-थल में कहीं भी कोई वस्तु हो, उसे देख सकते हैं! फिर क्या आप यह नहीं जानते कि मैं आपकी संतान की मां बनने जा रही हूं?''

विश्वामित्र के सिर से वासना का भूत उतर गया था। उन्हें अपने-आपसे घृणा होने लगी। वितृष्णा का सागर उनके तन-मन को डुबोने लगा। बार-बार वे अपने को धिक्कारने लगे। पश्चात्ताप की आग से उनका हृदय दग्ध होने लगा।

''आप गंभीर क्यों हो गए, महर्षि!'' मेनका ने उनके हाथ का स्पर्श करके कहा।

''मैं कितना बड़ा पापी हूं!''

''आपने कोई पाप नहीं किया। प्रकृति की स्वाभाविक प्रक्रिया को आप पाप क़हते हैं? नहीं, महर्षि...नहीं।''

''तुम क्या जानो, मेरे इस काम के कारण मुझे कितना कलंकित और दुर्बल कहा जाएगा...पृथ्वी पर मेरी जग-हँसाई होगी...मैं जाता हूं, मेनका।''

''कहां?''

''तपस्या करने।''

''मुझे ऐसी दशा में छोड़कर? मां बनने वाली नारी कितने कष्टों से गुजरती है, महर्षि, यह तो आप जानते ही हैं।''

पर विश्वामित्र ने मेनका की एक भी बात नहीं सुनी। उसने अनेक प्रार्थना की, पर कोई फल नहीं निकला।

विश्वामित्र अज्ञातवास की ओर चल पड़े।

नियत समय पर अप्सरा मेनका ने एक पुत्री को जन्म दिया।

पुत्री के जन्म के बाद मेनका भी उतनी ही निर्मम निकली, जितने विश्वामित्र।

वह उस नवजात बच्ची को वन में पशु-पक्षियों के हवाले करती हुई बोली, ''हे वन के पशु-पक्षियो, मैं अपने स्वामी का कर्तव्य पालन करने जा रही हूं। आप सब इस कन्या की रक्षा करना।''

मेनका स्वर्ग-लोक को चली गई।

फूल-सी कोमल बच्ची वन में लता की छत्रछाया में पड़ी रही—फूलों का बिछौना। वृक्ष का साया।

बच्ची रोने लगी।

उसे रोते देखकर अनेक शकुंत (पक्षी) आ गए और अपनी मधुर वाणी से उसे बहलाने लगे। शकुंतों ने उसे घेर लिया।

उसी समय महर्षि कण्व अपने शिष्यों के साथ घूमते-घूमते उधर आ गए। बच्ची का रोना सुनकर वे उधर बढ़े। देखा शकुंत-समूह (पक्षियों के झुंड) से घिरी एक नवजात बच्ची पड़ी है!

महर्षि कण्व चौंक पड़े। इस तरह आश्रम के वन में निरीह बच्ची का पड़े रहना उन्हें मानवीय गरिमा के प्रतिकूल लगा।

उन्होंने उस नवजात बच्ची को उठाकर अपने एक शिष्य को सौंपा। कहा, ''कौन इतनी कठोर मां होगी जिसने अपने हृदय के टुकड़े को इस तरह फेंक दिया! कुछ भी हो, हमारा धर्म है कि हम इसका पालन-पोषण करें।''

महर्षि कण्व उस बच्ची को अपने आश्रम में ले आए और उसका पालन-पोषण करने लगे।

समय के पंख निरंतर उड़ते चले गए।

महर्षि कण्व ने उस बालिका का नाम 'शकुंतला' रखा; क्योंकि उसे शकुंतों ने पाला था।

वह बालिका बड़ी होने लगी।

उसा समय आर्यावर्त पर राजा दुष्यंत राज्य करता था। वह बड़ा ही पराक्रमी राजा था। उसके राज्य में धर्म, जाति और रंग-भेद के कारण किसी पर अन्याय नहीं होता था। वह जितना शूरवीर था, उतना ही दयालु था। सूर्य के समान तेजस्वी और चंद्र के समान शीतल स्वभाव वाला राजा दुष्यंत अपने राज्य में हर कीमत पर शांति बनाए रखता था।

एक दिन की बात है।

राजा दुष्यंत शिकार खेलने के लिए निकला। उसके साथ उसके कई विश्वासी साथी थे। राजा धीरे-धीरे बीहड़ जंगल की ओर बढ़ता गया। उसे एक मृग दिखाई दिया। मृग अत्यंत आकर्षक व चालाक था। उसे जैसे भान हो गया था कि कोई शिकारी मेरा पीछा कर रहा है। बस, वह जान-बूझकर गहरे वृक्षों की ओट में भागने लगा।

राजा दुष्यंत अपने तेज भागने वाले घोड़े पर सवार था। वह भी जैसे दृढ़ निश्चय कर बैठा था कि उस मृग का शिकार करके ही रहेगा।

मृग कभी उसे दिखाई देता था और कभी अदृश्य हो जाता था।

राजा दुष्यंत अपने साथियों से बिछुड़कर अकेला रह गया। उसने बहुतेरी कोशिश की, पर मृग उसकी आंखों से ओझल हो गया।

हताश राजा ने अपना घोड़ा रोक लिया और इधर-उधर देखने लगा।

पर उसे मृग कहीं नजर नहीं आया।

वह घोड़े से नीचे उतरकर एक सरोवर के पास गया। हाथ-मुंह धोकर सुस्ताया। फिर वह घोड़े को एक वृक्ष से बांधकर आगे बढ़ा।

अब उसे कई कुटिया दिखाई दीं। उसे यह समझते जरा भी देर नहीं लगी कि यह जगह किसी ऋषि का आश्रम है।

अभी वह थोड़ा आगे बढ़ा ही था कि उसे युवती शकुंतला दिखाई दी। सादे वस्त्रों में वह अत्यंत सुंदर दिखाई दे रही थी।

राजा देखते ही उस पर मुग्ध हो गया। उसे लगा कि साक्षात् अप्सरा उसके सामने खड़ी है। वह मन-ही-मन उसके रूप की सराहना करता रहा।

अचानक शकुंतला की दृष्टि भी राजा दुष्यंत पर पड़ी। वह वेश-भूषा देखते ही समझ गई कि वह कोई प्रतिष्ठित राजा-महाराजा है।

अपने आश्रम में आया जानकर शकुंतला ने आदर भाव से कहा, ''माननीय अतिथि, महर्षि कण्व के आश्रम में आपका स्वागत है।''

''धन्यवाद! मैं राजा दुष्यंत हूं।''

शकुंतला ने कहा, ''मैं आपकी क्या सेवा कर सकती हूं?''

''मैं परम तपस्वी महर्षि कण्व के दर्शन करना चाहता हूं। मुझे उनकी तपोभूमि दिखला दीजिए।''

शकुंतला ने निःसंकोच भाव से कहा, ''मान्यवर! मेरे पूजनीय पिताजी अभी आश्रम से बाहर हैं। आप प्रतीक्षा कीजिए, वे आ जाएंगे।''

''ओह!'' दुष्यंत ने एक निःश्वास छोड़कर कहा, ''क्या मैं यहां विश्राम कर सकता हूं?''

''अवश्य! अवश्य!'' शकुंतला ने उन्हें बैठने का संकेत करके कहा।

तभी शकुंतला की सहेलियां आ गईं। शकुंतला को एक अपरिचित से बातचीत करते देखकर वे विस्मित रह गईं।

एक ने पूछा, ''सखी! राजकीय वेश-भूषा में यह तेजस्वी कौन महापुरुष है?''

''सखी! ये परम प्रतापी राजा दुष्यंत हैं। महर्षि कण्व के दर्शन करने आए हैं।''

''ओह!'' दूसरी सखी ने कंधे उचकाए।

''क्योंकि महर्षि बाहर हैं, अत: ये प्रतीक्षा करेंगे।''

''फिर तुम इन्हें आतिथ्य का आनंद दो। हम फल-फूल लेकर आ रही हैं।''

वे मुसकराती हुई चली गईं।

राजा दुष्यंत ने शकुंतला से पूछा, ''कल्याणी! आप क्या सचमुच महर्षि की कन्या हैं...महर्षि कण्व तो तेजस्वी ब्रह्मचारी हैं! उन्होंने तो विवाह भी नहीं किया है।''

शकुंतला ने अपनी जन्म-कथा को सच-सच बताकर कहा, ''राजन्! यह सब विधि का विधान है। फिर भी जनक, रक्षक और पोषक, ये तीनों पिता ही कहलाते हैं। इस तरह मैं कण्व की पुत्री कहलाई।''

राजा दुष्यंत ने कुछ देर तक सोचा—फिर तो यह ब्राह्मण की बेटी न होकर राजकन्या है। यह मेरी पत्नी होने योग्य है।

अचानक राजा दुष्यंत ने शकुंतला की ओर देखा। दोनों की आंखें चार हुईं। दोनों एक-दूसरे को मुग्ध भाव से देखते रहे।

फिर शकुंतला ने सिर झुका लिया।

राजा दुष्यंत ने स्पष्ट शब्दों में कहा, ''सुमुखी! मैं राजा दुष्यंत बिना किसी भूमिका के प्रस्ताव करता हूं—मैं तुमसे गंधर्व-विवाह करना चाहता हूं। यह पद्धति राजाओं के लिए सर्वश्रेष्ठ मानी गई है...''

शकुंतला यह प्रस्ताव सुनकर मन-ही-मन प्रसन्न हो गई, फिर भी मर्यादा का ध्यान करके वह बोली, ''राजन्! आप जैसा धर्मात्मा और यशस्वी राजा मुझे और कहां वर के रूप में प्राप्त होगा! फिर भी मेरे पूज्य पिताजी बाहर गए हुए हैं, ऐसी स्थिति में यह संभव नहीं है।''

थोड़ी देर दोनों चुप रहे।

एक-दूसरे को देखते रहे। सोचते-विचारते रहे। फिर राजा दुष्यंत ने कहा, ''सुमुखी! यह सही है कि पिता द्वारा ही कन्यादान होना चाहिए पर गंधर्व-विवाह में उसकी कोई आवश्यकता नहीं होती। मैं तुम्हें चाहता हूं और यदि तुम मुझे चाहती हो तो मुझे वरण कर लो।''

शकुंतला ने सिर झुकाए हुए कहा, ''राजन्! यह सत्य है कि मैं भी आपको चाहने लगी हूं...आप जैसा धीर-वीर-गंभीर वर किसी आर्य-कन्या को बिना किसी प्रयास के मिल जाए तो उसे परम सौभाग्यशालिनी

समझना चाहिए!''

राजा दुष्यंत ने कहा, ''मैं भी तुमसे विवाह करके अपने-आपको भाग्यशाली मानता हूं। वैसे मनुष्य अपना हितैषी स्वयं होता है। अपनी अच्छाई-बुराई वह स्वयं देखता है, इसलिए तुम धर्म के अनुसार स्वयं को मुझे सौंपकर अपने दायित्व को पूरा करो।''

शकुंतला ने आकाश और धरती की ओर देखकर कहा, ''यदि मैं अपने को आपको सौंप सकती हूं तो आपको एक प्रतिज्ञा करनी होगी।''

''कौन-सी प्रतिज्ञा?'' राजा चौंका।

शकुंतला ने गंभीर स्वर में कहा, ''राजन्! यदि आप मेरे पुत्र को ही सम्राट बनाएं तो मैं आपसे गंधर्व-विवाह कर सकती हूं।''

राजा दुष्यंत तो उस लक्ष्मीस्वरूपा शकुंतला पर बहुत ही आसक्त था। उसने तुरंत ही कह दिया, ''मैं तुम्हें वचन देता हूं कि मैं तुम्हारे बेटे को ही अपना युवराज बनाऊंगा। उसे ही अपना साम्राज्य सौंपूंगा।''

बस, दोनों ने बिना गंभीरता से सोचे-समझे गंधर्व-विवाह कर लिया।

राजा दुष्यंत शकुंतला के प्रेम में खो गया। फिर उसे शीघ्र ही अपने पास बुलाने का वचन देकर वह अपनी राजधानी लौटने लगा।

शकुंतला सुबह-सुबककर रो पड़ी।

उसने कहा, ''स्वामी! आप मुझे तुरंत ही आकर ले जाइए। मैं आपके वियोग को सह नहीं पाऊंगी।''

राजा ने विश्वासपूर्ण स्वर में कहा, ''शकुंतला! मैं तुम्हें लेने के लिए स्वयं आऊंगा। तुम्हें राजसी वैभव के साथ ले जाऊंगा।''

राजा दुष्यंत उसे भांति-भांति की दिलासाएं देकर चल पड़ा। जाने से पहले उसने उसे अपनी अंगूठी दी। कहा, ''यह मेरी राजकीय अंगूठी है। इसके कारण तुम उतनी ही गरिमामय हो गईं जितना मैं हूं।''

राजा के जाते ही शकुंतला बेचैन और दुःखी हो गई।

उसे रह-रहकर यह आशंका उठती थी कि कहीं राजा नहीं आया तो? उसके पिताजी क्या कहेंगे?

उसकी आंखें बार-बार भर आती थीं।

कुछ समय बाद कण्व मुनि लौट आए। शकुंतला मारे लाज के उनके

सामने नहीं गई। उसे बार-बार लगता कि उससे कोई भयानक गलती हो गई है। अपराध हो गया है।

वह अपने पिता से आंखें चुराने लगी।

कण्व मुनि समझ गए कि दाल में कुछ काला है।

उन्होंने शकुंतला की खास सहेली अनसूया को बुलाकर पूछा, "क्या बात है, बेटी? मेरे आने के बाद शकुंतला मुंह चुराकर क्यों बैठी है? वह हमसे मिली भी नहीं।"

अनसूया तुरंत शकुंतला को बुलाकर लाई।

शकुंतला ने उन्हें सारी बातें बताकर कहा, "मुझसे अपराध हो गया है, पिताश्री। मैं इस भूल के लिए आपसे क्षमा चाहती हूं।"

मुनि कण्व ने कहा, "नहीं बेटी! सही तो यह है कि वर का चुनाव लड़की को ही करना चाहिए। फिर तुमने तो राजा दुष्यंत से विवाह किया है। राजा दुष्यंत महान् पराक्रमी, धर्मात्मा और श्रेष्ठ पुरुष है। क्षत्रियों के लिए गंधर्व-विवाह शास्त्र-सम्मत है। बेटी! मैं भविष्य को देख रहा हूं। तुम दोनों का एक अत्यंत ही बलशाली बेटा होगा। वह सारे आर्यावर्त का राजा होगा, दिग्विजयी होगा और उसकी कीर्ति का ध्वज समस्त भूमंडल पर फ़हराएगा।"

शकुंतला ने कण्व मुनि के चरणों में लेटकर विनीत भाव से कहा, "आप नर रूप में नारायण हैं। आपके उदार वचनों को सुनकर मेरे मन की सारी दुविधाएं खत्म हो गई हैं।"

कण्व मुनि अपने कार्य में व्यस्त हो गए।

शकुंतला राजा दुष्यंत की याद में पागल-सी हो गई।

हर सुबह जब सूर्य की पवित्र किरणें पृथ्वी पर अवतरित होती थीं, तब वह राजा दुष्यंत की प्रतीक्षा करती! और सूर्य डूबने पर वह उदास होकर अपनी पर्ण-कुटिया में चली जाती थी।

दिन तो दिन, कई माह बीत गए।

राजा दुष्यंत गया तो वापस लौटकर नहीं आया।

शकुंतला सोचती, क्या राजा ने सचमुच उसके साथ कपट किया है? क्या राजा लोभी भंवरे की तरह उसका यौवन-रस पीकर उड़ गया!

उसकी चिंता और गहरी हो गई जब उसे पता चला कि वह गर्भवती है—उसके पेट में राजा दुष्यंत का अंश पल रहा है।

ओह! उसके भाग्य में क्या लिखा है! क्या वह दुर्भाग्य के झूले में झूलती रहेगी? लेकिन वह इन सभी घटनाओं का दोष किसे दे? उसी के मन के अनुसार सब कुछ हुआ है, फिर वह किसे अपनी दुःख की गाथा सुनाए? किसे कहे कि कोई राजा दुष्यंत के पास जाकर उसे संदेश दे कि वह आकर उसे ले जाए। यदि राजा नहीं आया तो वह अभागी क्या सारी उम्र पिता के घर ही पड़ी रहेगी? उसकी होने वाली संतान क्या वनचरों की तरह जिएगी?

वह इसी उधेड़बुन में डूबी हुई थी कि उसकी कुटिया के सामने महर्षि दुर्वासा आ गए। दुर्वासा ने शकुंतला की ओर देखकर कहा, ''मां, भिक्षा दे! मां, भिक्षा दे! मां, भिक्षा दे...''

शकुंतला दुष्यंत की याद में खोई थी। उसे दुर्वासा के आने का ध्यान नहीं रहा। वह अपने जीवन के अंधेरों में भटक रही थी। चिंताओं के सागर में डूबी हुई थी।

दुर्वासा मुनि ने फिर पुकारा, ''मां! भिक्षा दे।''

शकुंतला ने उनकी पुकार नहीं सुनी। वह अपने-आपमें खोई रही।

दुर्वासा मुनि ने इसे अपमान समझा। वैसे ही क्रोध के पर्यायवाची हैं महामुनि दुर्वासा।

मुनि का मन क्रोध से भर गया। उन्होंने कमंडल में से जल निकालकर चल्लू में भरा। आंखों को लाल करते हुए वे शाप दे बैठे, ''तूने मेरा अपमान किया है! जा, तू जिसकी स्मृति में खोई बैठी है, वह तुझे भूल जाएगा।''

शाप लगते ही शकुंतला की चेतना लौट आई।

उसने देखा—सामने महर्षि दुर्वासा खड़े हैं। वह कांप उठी। उसे अपनी भूल का अहसास हुआ। वह 'क्षमा...क्षमा...क्षमा' करती दुर्वासा के चरणों में गिर पड़ी। रोकर बोली, ''मुनिवर! मुझ हतभागिनी को इतना भयंकर शाप मत दीजिए। मुझे क्षमा कर दीजिए, दयानिधान!''

जब शकुंतला करुण क्रंदन करने लगी तो दुर्वासा का क्रोध उतरा। हृदय में दया के अंकुर फूटे। वे बोले, ''देवी! मैंने जो शाप दे दिया वह

झूठा नहीं होगा, पर कालांतर तुम्हें वह फिर मिल जाएगा, जिसकी स्मृति में तू खोई हुई थी।''

शकुंतला के जी में जी आया।

दुर्वासा मुनि चले गए।

शकुंतला फिर राजा दुष्यंत की स्मृतियों में खो गई।

राजा दुष्यंत नहीं आया।

इधर कण्व मुनि को जब यह मालूम पड़ा कि शकुंतला मां बनने वाली है तब वे जरा व्यग्र हो उठे। उन्होंने सोचा कि राजा दुष्यंत अत्यंत ही धर्मात्मा राजा हैं, पर मेरी बेटी को लेने के लिए क्यों नहीं आए? वैसे राजा दुष्यंत की याद में शकुंतला इतनी डूब गई थी कि महर्षि दुर्वासा ने उसे शाप दिया है, यह भी भूल गई है!

इन्हीं बातों को सोचकर मुनि कण्व ने शकुंतला को राजा के पास भेजने का निश्चय किया।

उन्होंने अपने दो शिष्यों को बुलाकर कहा, ''तुम दोनों मेरी बेटी को उसकी ससुराल राजा दुष्यंत के पास ले जाओ!''

जब शकुंतला को यह पता चला कि उसे ससुराल भेजा जा रहा है तो वह व्याकुल हो उठी। आश्रम को इस तरह छोड़ना तथा बिना बुलावे के अपनी ससुराल जाना, उसे बहुत ही खेदजनक लगा! उसने कण्व मुनि से कहा, ''पिताश्री! क्या किसी भी लड़की का बिना बुलाए पहली बार ससुराल जाना उचित है?''

कण्व मुनि ने कहा, ''नहीं, पर तुम मां बनने वाली हो, ऐसी स्थिति में इन सभी बातों की जानकारी तुम्हारे ससुराल वालों को होना जरूरी है। बेटी! तुम्हें अपनी ससुराल तो जाना ही है!''

शकुंतला अपने पिता के सामने क्या कहती! उसने ससुराल जाना स्वीकार कर लिया।

कण्व मुनि शकुंतला के वियोग की सोचकर विगलित हो उठे। उनकी आंखें भर आईं।

शकुंतला की सहेलियां रोने लगीं। उसका पाला हुआ हिरन भी आंसू बहाने लगा। शकुंतला ने कितनी ही बेलें उगाई थीं। वह उनसे लिपटकर

बिलख उठी। अत्यंत ही करुणा-भरा दृश्य था।

ऐसा लग रहा था जैसे आश्रम के जीव-जंतु और वनस्पति तक उदास हैं।

शकुंतला जाते-जाते एक बार फिर बिलख उठी। उसने जोर से कहा, ''हे वन के प्राणियो! हे पक्षियों! मैं आपसे विदा ले रही हूं। मुझसे कोई भी गलती हुई तो क्षमा करना।''

शकुंतला इस तरह कण्व मुनि के आश्रम से विदा हो गई।

राजा दुष्यंत मुनि दुर्वासा के शाप के कारण शकुंतला को वास्तव में भूल गया। उसे याद ही नहीं रहा कि कभी उसने एक वनकन्या के साथ गंधर्व-विवाह भी किया था। किसी के नारीत्व और सतीत्व का वरण किया था।

वह तो अपने राजकाज व भोग-विलास में डूब गया।

उस दिन राजा दुष्यंत का दरबार लगा था। उसके राजपुरोहित, मंत्री एवं कई बड़े सरदार दरबार में बैठे थे।

तभी दरबान ने आकर कहा, ''महाराजा की जय हो! दो तपस्वी और एक युवती आपसे मिलना चाहते हैं।''

''उन्हें दरबार में सम्मान के साथ लाया जाए।''

थोड़ी देर में शकुंतला और कण्व मुनि के दो शिष्य उपस्थित हुए। शकुंतला ने जरा-सा घूंघट निकाल रखा था।

राजा ने कहा, ''तपस्वीजन! आपने मेरे दरबार में आने का कष्ट कैसे किया? मेरे लिए कोई सेवा कहिए। मैं आपको नमस्कार करता हूं।''

एक तपस्वी ने आशीर्वाद देकर कहा, ''हे राजाओं में श्रेष्ठ राजा, हम कण्व मुनि के शिष्य हैं और उनकी आज्ञा से आपको आपकी धरोहर सौंपने के लिए आए हैं।''

राजा गंभीर हो गया। उसने कहा, ''मैं आपका तात्पर्य नहीं समझा।''

''महाराज! हमारे साथ जो यह सन्नारी है, वह आपकी गंधर्व-विवाह द्वारा ग्रहण की हुई पत्नी शकुंतला है।''

राजा के हृदय पर जैसे आघात लगा हो। वह खड़ा होकर बोला, ''मेरी पत्नी! यह आप क्या कह रहे हैं?''

''महाराज! याद कीजिए...''

''हमें खूब याद है। हमारी कोई पत्नी ऐसी नहीं है जो महल के बाहर हो!''

''क्या हम तपस्वी झूठ बोल रहे हैं?'' दूसरे तपस्वी ने नाराजगी से कहा, ''जिनका जीवन सत्य, धर्म और न्याय के अनुसार चलता है, वे तपस्वी क्या झूठ बोलेंगे? राजन्! यह आपकी धर्मपत्नी है; आप इसे संभालिए। हमारा कर्तव्य इतना ही था कि हम इसे आपके पास पहुंचा दें सो पहुंचा दिया। अब आप अपने कर्तव्य का पालन कीजिए।''

इतना कहकर वे दोनों तपस्वी चलते बने।

शकुंतला असहाय-सी उस दरबार में खड़ी रही। वह पीड़ा से तड़प रही थी।

शकुंतला ने अपना घूंघट हटाकर कहा, ''महाराज! अब पहचानिए अपनी इस पत्नी शकुंतला को, जिस पर मोहित होकर आपने कण्व मुनि के आश्रम में गंधर्व-विवाह किया था। जिससे आपने प्रतिज्ञा की थी कि 'मैं स्वयं आकर तुम्हें बाजे-गाजे के साथ ले जाऊंगा।' क्या, महाराज, आप वह सब भूल गए?''

''मुझे कुछ भी स्मरण नहीं आता!''

''यह आप क्या कह रहे हैं, महाराज...उस पर्ण कुटिया में आपने...''

राजा ने नाराजगी के भाव से कहा, ''लग रहा है कि तू मुझ पर झूठा आरोप लगाकर महलों की रानी बनाना चाहती है? तू दुष्टा और दुश्चरित्र लग रही है!''

''महाराज! आप भूल रहे हैं। आपने मुझसे गंधर्व-विवाह किया था! मैं आपके बच्चे की मां बनने वाली हूं।''

इस बार राजा ठहाका लगाकर हँसा। बोला, ''सो, अभी तो तू विवाह की बात कर रही थी और अब मेरी संतान की मां भी बनने की घोषणा कर दी!''

सारा दरबार ठहाका मारकर हँस पड़ा।

शकुंतला को काटो तो खून नहीं। वह अचेत-सी हो गई। यदि खंभे का सहारा नहीं होता तो वह गिर जाती।

उसने संभलकर कहा, ''महाराज! कोई नारी जो तपस्विनी है, अपनी

इज्जत को भरे दरबार में कलंकित नहीं कर सकती। महाराज! यदि मैं झूठी हूं तो धर्म मुझे जला डाले। यह पृथ्वी मुझे अपने में समेट ले। आप अवश्य झूठ कह रहे हैं! ऐसा ढोंग तो कोई नीच प्राणी ही कर सकता है...''

''ऐ दुष्टा! तू मुझे ही मेरे दरबार में अपमानित कर रही है! यदि तूने अपनी यह झूठी कहानी समाप्त नहीं की तो मैं तुझे अपने दरबानों से धक्के देकर निकलवा दूंगा। जिस राजा के राज्य में धर्म का आचरण हर प्राणी करता है, उस राजा पर तू आरोप लगाती है? जा, यहां से चली जा!''

''महाराज!'' शकुंतला रो पड़ी, ''मेरा ऐसा अपमान और तिरस्कार मत कीजिए! मुझ पर दया कीजिए। अपनी पतिव्रता स्त्री को वन-वन भटकने के लिए मत छोड़िए।''

''कहा न, मैं तुझे नहीं जानता। तू मुझे एक चालाक, कुलटा स्त्री लगती है। मेरी स्मरण-शक्ति इतनी कमजोर नहीं है कि मैं चंद माह पहले की बातें भूल जाऊं।''

''ओह! यह कैसा दुर्भाग्य है?'' शकुंतला ने बिलखकर कहा, ''आज मैं अपने ही पति के द्वारा नहीं पहचानी जा रही हूं। महाराज! मुझसे कपट मत करिए। सत्य हजारों अश्वमेध यज्ञों से भी श्रेष्ठ होता है!''

''शकुंतले! मुझे ज्ञान की बात मत समझाओ। मैं शास्त्रों को जानता हूं। मैं यह भी जानता हूं कि स्त्रियां प्राय: झूठ बोलती हैं। यदि तेरे पास कोई प्रमाण हो तो दे!''

सहसा शकुंतला को दुष्यंत की दी हुई अंगूठी याद आई। पर उस भाग्यहीना को क्या पता कि अंगूठी नदी पार करते हुए जल में गिर गई थी।

उसने उत्साह से कहा, ''मेरे पास आपकी दी हुई अंगूठी है।'' उसने अपने बाएं हाथ से दाएं हाथ की अंगूठी निकालनी चाही, पर अंगूठी थी कहां?

राजा ने व्यंग्य से मुसकराते हुए कहा, ''बताओ, अंगूठी कहां है? चालाक स्त्री! झूठ के पांव कच्चे होते हैं। तू अब तो मान जा कि तू मेरी पत्नी नहीं है। अब अपना नाटक बंद करके चली जा, वरना तुझे दंड देना

पडेगा।''

शकुंतला हताश हो गई। उसने कहा, ''महाराज, मैं जाती हूं, पर इतना कहे देती हूं कि आप एक दिन पछताएंगे! मैं आपकी सती पतिव्रता स्त्री हूं। मेरी कोख में आपकी संतान है। पर दुर्भाग्य ने मुझे अभी घेर रखा है! मैं जाती हूं, स्वामी, पर एक दिन आप स्वयं मेरी तरह बिलखेंगे?''

शकुंतला दरबार से बाहर निकल गई। वह भाग्य के भरोसे चल पड़ी।

एक दिन राजा दुष्यंत संध्या के समय बगीचे में टहल रहे थे। उनके साथ उनकी दो रानियां थीं।

वे तरह-तरह के हास-परिहास कर रहे थे कि दासी ने आकर प्रणाम किया। कहा, ''महाराज! एक मछुआरा आपसे इसी समय मिलना चाहता है।''

''मछुआरा?'' राजा चौंका।

''हां, महाराज...मैंने उसे बहुत समझाया पर वह मानता ही नहीं। बार-बार कह रहा है कि मुझे महाराज से अत्यंत जरूरी काम है?''

राजा दुष्यंत ने अपनी रानियों की ओर देखकर कहा, ''सच्चा राजा वही होता है जो अपनी प्रजा के छोटे से छोटे निवेदन पर ध्यान देता है।''

''हां, महाराज।'' रानियों ने उनकी बात का समर्थन किया।

राजा दुष्यंत बगीचे से बाहर निकलकर दरबार में आए। दरबार में आकर उन्होंने उस मछुआरे को बुलाया।

मछुआरे ने महाराज की जयकार की!

''क्या बात है, भाई?'' राजा ने नम्रता से पूछा।

मछुआरे ने कहा, ''महाराज! मैं मछुआरा हूं। इधर-उधर मछलियां पकड़कर अपने जीवन का निर्वाह करता हूं। कल मैंने एक ऐसी मछली पकड़ी जिसको काटने पर उसके पेट से एक कीमती अंगूठी निकली।''

''अंगूठी?''

''हां, महाराज...सबसे अचरज की बात यह है कि उस अंगूठी पर राजचिह्न भी अंकित है!''

''क्या कहते हो?''

उसने सिर नवाकर कहा, ''महाराज! मैं सच कह रहा हूं।''

उसने वह अंगूठी निकालकर महाराज के सामने प्रस्तुत की, ''यह देखिए, यही वह अंगूठी है!''

राजा ने जैसे ही वह अंगूठी देखी वैसे ही उसकी स्मृति लौट आई। एक-एक चित्र उसकी आंखों के आगे घूम गया। राजा को लगा, उसे चक्कर आ जाएगा। उसने सिंहासन को मजबूती से पकड़ लिया।

''क्या बात है, महाराज?'' मछुआरे ने कांपते हुए कहा, ''मुझसे कोई अपराध हो गया?''

''नहीं, भाई, अपराध तो मुझसे हो गया। मैंने महापाप किया है। शकुंतले...शकुंतले...तुम कहां हो?''

राजा दुष्यंत तुरंत महल में गया। चंद पलों में ऐसा लगने लगा जैसे वह कई दिनों से बीमार हो।

बड़ी रानी ने पूछा, ''क्या बात है, महाराज? आप एकाएक रुग्ण कैसे दिखने लगे!''

''रानी! मुझसे घोर पाप हो गया! जो स्त्री दरबार में आकर पुकार-गुहार कर रही थी, वह सचमुच मेरी पत्नी शकुंतला है। मैंने उससे गंधर्व-विवाह किया था। हे भगवान्! यह क्या लीला है कि मैं उसे एकदम भूल गया। हाय! मुझे क्या हो गया था?''

राजा पश्चात्ताप की आग में जलने लगा।

बड़ी रानी ने राजा के कंधे पर हाथ रखकर कहा, ''महाराज! किसी पाप का निराकरण तभी हो सकता है जब उसका पश्चात्ताप किया जाए। यह सब कैसे हो गया! जिस स्त्री के साथ आपने प्रणय-भरे क्षण गुजारे उसे एकदम कैसे भूल गए?''

''पता नहीं, कौन-सा विधि-विधान था, पर यह सत्य है कि उसके बार-बार विलाप करने के बाद भी मैंने उसे नहीं पहचाना। प्रिये! मैंने उसे बहुत ही ओछे शब्द कहे। उसको कुलटा प्रमाणित किया। ओह! उसने मुझे कहा था कि मैं आपकी पत्नी हूं और मेरे भीतर आपके वंश का तेज है, पर मैंने उसे दुत्कार किया। मैंने उसे कहा कि कहां मेनका, कहां विश्वामित्र और कहां तुम एक साधारण नारी! सच, मुझ जैसे पापी को नरक में भी स्थान नहीं मिलेगा। अवश्य किसी अमोघ शक्ति का ही मुझ

पर प्रभाव था...शकुंतले! अब मैं तुम्हें कहां ढूंढूं?''

राजा उसी तरह विलाप करने लगा, जैसे शकुंतला ने किया था।

अब राजा दुष्यंत नित्य रथ पर सवार होकर शकुंतला को ढूंढ़ने निकल जाता था और निराश होकर लौट आता था।

राजा दुष्यंत ने शकुंतला का एक चित्र बनाया। वह उस चित्र के सामने खड़ा होकर कहता रहता था—'मैंने तुम्हें इतने नीच वचन कहे हैं, प्रिये, जितना कोई किसी क्षुद्र नारी को भी नहीं कह सकता!'

समय बीतता जा रहा था!

एक दिन राजा जंगल में घूम रहा था। घूमते-घूमते वह एक अत्यंत ही बीहड़ पर्वत-मालाओं से घिरे-स्थल पर पहुंचा। प्रकृति की अद्‌भुत छटा से लग रहा था कि यह भी कोई आश्रम है। सहसा राजा दुष्यंत को शकुंतला की याद हो आई।

ऐसे ही सुरम्य स्थल पर उसे शकुंतला मिली थी। ओह! वह कितनी पवित्र स्त्री थी! उसके बड़े-बड़े नयनों से प्रणय के झरने फूट रहे थे। उसकी मधुर वाणी में सरस्वती का वास था।

राजा इन्हीं विचारों में खोया हुआ था कि उसे सिंह-गर्जना सुनाई पड़ी।

राजा चौंका।

इधर-उधर देखा तो दंग रह गया—आठ-दस वर्ष का एक तेजस्वी सुंदर बालक दो शेरों से खेल रहा था। इतना निर्भीक बालक देखकर राजा के मन में उत्सुकता जागी कि पूछे यह बालक कौन है?

राजा आहिस्ता-आहिस्ता उसके पास गया।

शेर ने गुर्राकर उसे देखा तो राजा भी सावधान हो गया।

उस बालक ने कहा, ''राजन्! हमारे आश्रम के आसपास हिंसा करना मना है। ये जानवर मेरे सहचर हैं। मित्र हैं। यदि आपने इन पर घात किया तो मुझे भी अपना धनुष-बाण संभालना होगा।''

राजा का उस बालक के प्रति अजीब-सा मोह जाग गया। उसे प्रतीत हुआ कि उसके अंतस् में ममता के झरने फूटने लगे हैं...उसने आगे बढ़कर कहा, ''बालक! तुम कौन हो? किसके पुत्र हो?''

बालक ने शेरों को भगाते हुए कहा, ''श्रीमन्! मैं बालक हूं और अपनी मां का बेटा हूं!''

''और पिता?''

''पिता को मैं नहीं जानता। श्रीमन्! मेरी मां ही मेरी जनक, रक्षक और पोषक है। वही मेरी पिता और गुरु भी है।''

''बहुत बुद्धिमान हो तुम!''

''यह भी मां की कृपा का फल है।''

राजा दुष्यंत ने नजदीक आकर कहा, ''यह अस्त्र-शस्त्र की विद्या...''

''यह भी मेरी मां ने ही दी है।''

''लगता है कि तुम अपनी मां को बहुत प्यार करते हो।''

''प्यार के साथ-साथ मैं अपनी मां का बहुत आदर करता हूं। उसकी आज्ञा पर मैं अपने प्राणों को न्योछावर कर सकता हूं।''

''क्या मैं तुम्हारी मां के दर्शन कर सकता हूं?''

''कर सकते हैं, पर यदि मेरी मां आपको आज्ञा देगी, तभी श्रीमन्!'' बालक ने राजा को गहराई से देखते हुए कहा, ''वैसे आप रंग-ढंग, वेश-भूषा और शस्त्रों से तो किसी राजकुल के लगते हैं।''

''हां, मैं राजा हूं।''

बालक ने उन्हें सिंहासननुमा चट्टान पर बिठाते हुए कहा, ''मैं अपनी मां से पूछकर आता हूं।''

बालक उस पर्ण-कुटिया की ओर चला गया, जो थोड़ी ही दूर पर स्थित थी।

पर्ण-कुटिया के चारों ओर अत्यंत ही मनोरम दृश्य था। चारों ओर फूल खिले थे। लताओं की छायाएं पसरी हुई थीं।

एक हिरन का बच्चा इधर-उधर खेल रहा था।

मां की आज्ञा लेकर वह बालक राजा को बुलाने आया। बालक ने राजा दुष्यंत को संकेत करके कहा, ''यह मेरी मां की पर्ण-कुटिया है। मेरी पूजनीय मां कुटिया के भीतर है।''

राजा ने चारों ओर दृष्टिपात करके कहा, ''ऐसा लगता है कि मैं किसी तपस्विनी के आश्रम में आ गया हूं। कितनी शांति है यहां!''

वे दोनों कुटिया के समीप पहुंच गए थे। बालक ने पुकारा, ''मां...मां...! देख हमारे यहां कोई अतिथि आया है!''

''आती हूं, बेटा। तुम अतिथि को पर्ण-आसन पर बिठाओ।'' मधुर स्त्री-स्वर सुनाई पड़ा।

बालक ने पर्ण-आसन बिछा दिया।

राजा दुष्यंत उस पर बैठ गया। स्त्री की आवाज कुछ जानी-पहचानी लग रही थी। उसके भीतर हलचल मच गई।

उसने सोचा— आज यदि मेरा पुत्र होता तो वह भी इस बालक जितना होता।

उसी समय शकुंतला बाहर आ गई। उसने जैसे ही राजा दुष्यंत को देखा, वैसे ही उसे अपमान के क्षण याद हो आए। फिर भी अपने पर संयम करके वह बोली, ''मैं अतिथि प्रभु का स्वागत करती हूं!''

राजा का गला अवरुद्ध हो गया था। वह अपने को संयत करके बोला, ''शकुंतले...शकुंतले...मुझे पहचाना नहीं? मैं राजा दुष्यंत हूं... तुम्हारा पति...''

शकुंतला ने तीखी निगाह से देखकर कहा, ''छिः...आपको तो मैं नहीं जानती।''

''नहीं शकुंतले...ऐसा न कहो। विधि के विधान से त्रस्त मैं तब तुम्हें नहीं पहचान सका...तुम्हारा अपमान किया। मैंने तुम्हारे वचनों के मर्म को नहीं समझा। शकुंतले! मुझे क्षमा कर दो।''

शकुंतला ने उसी कठोरता से कहा, ''जो पुरुष पति बनकर स्त्री का सबसे बड़ा धन छीन लेता है, फिर उस स्त्री का अपमान करता है, वह क्षमा के योग्य नहीं होता, दंडनीय होता है।''

राजा दुष्यंत ने पछतावे से कहा, ''मैंने तो असह्य दंड भुगत लिया है, शकुंतले! यह तो किसी का शाप था...मैं अपनी भूल स्वीकार करता हूं। मैंने...''

''महाराज, आप यहां से चले जाइए।'' शकुंतला ने कठोर स्वर में कहा, ''आपने पति-पत्नी के संबंध का सौवां हिस्सा भी शेष नहीं रखा। राजन्! यह बालक मेरा पुत्र है, तुम्हारा नहीं...तुम चले जाओ, वरना मैं भी तुम्हें कटु अपमान-भरे वाक्य-बाणों से बींध डालूंगी।''

राजा दुष्यंत ने बालक की ओर देखा। बालक चकित भाव से दोनों को देख रहा था। बड़ों के बीच में बोलना उसने अच्छा नहीं समझा।

राजा ने कहा, ''शकुंतले! बात यह है कि मुझे जैसे ही तुम्हारी अंगूठी मिली, वैसे ही मुझे सारी बातें स्मरण हो उठीं।''

''वह अंगूठी कहां मिली?'' शकुंतला चौंकी।

''एक मछुआरे के पास से। उसने जैसे ही अपनी पकड़ी हुई मछली को काटा, उसके पेट से मेरी अंगूठी मिली। शकुंतले! यह भाग्य का खेल है।''

सहसा शकुंतला को भी दुर्वासा का शाप याद हो आया। वास्तव में यह विधि का विधान ही था! फिर भी उसने राजा को सरलता से क्षमा नहीं किया।

राजा की आंखें भर आईं और उसने यह धमकी दी कि वह यहीं अपने प्राण त्याग देगा; तब शकुंतला ने उसे क्षमा करते हुए अपने पुत्र से कहा, ''यह तुम्हारे पिताश्री हैं। तुम्हारा सर्वांग इन्हीं का है। अपने पिता को प्रणाम करो। ये महाप्रतापी राजा दुष्यंत हैं!''

बालक ने राजा को प्रणाम किया। राजा ने उसे बांहों में भर लिया।

राजा दुष्यंत शकुंतला को अपने देश ले आया। उस बालक का नाम भरत रखा गया। समय बीतने पर भरत राजा दुष्यंत का उत्तराधिकारी बना। उसका शासन बड़ा ही विख्यात हुआ।

शकुंतला के इस बेटे के नाम से ही इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा। मुनि कण्व ने भरत द्वारा कई यज्ञ कराए और भरत चक्रवर्ती सम्राट् बना।

शकुंतला और राजा दुष्यंत वन में तपस्या करने चले गए।

शकुंतला को 'नारी का संपूर्ण रूप' माना जाता है।

तारामती

त्रेतायुग में हरिश्चंद्र नामक एक राजा था। वह बड़ा ही धर्मात्मा, दानी, वीर और धीर प्रकृति का था। उसकी यश की गाथा चारों ओर फैली हुई थी। उस राजा की राज्य-व्यवस्था ऐसी सुंदर थी कि उसके राज्य में न कभी अकाल पड़ता था और न कभी महामारी होती थी। सारी प्रजा सुखी और संतुष्ट थी।

राजा हरिश्चंद्र की तारामती नाम की रानी थी। तारामती भी पति की तरह धर्मपरायण और त्यागी थी। वह हर सुबह भगवान सूर्य का दर्शन करके दान करती थी। उसके दरवाजे से कोई भी व्यक्ति निराश लौटकर नहीं जाता था।

रानी अपने पति की आज्ञा पर अपना सर्वस्व-त्याग कर देती थी।

रानी तारामती के एक पुत्र था। उसका नाम रोहिताश्व था। रोहित भी अपने पिता की तरह दयालु और सुंदर था।

एक दिन की बात है।

रानी तारामती, हरिश्चंद्र और रोहित महल में बैठे थे। रोहित खेल रहा था। तारामती और हरिश्चंद्र इधर-उधर की चर्चाएं कर रहे थे।

अचानक रानी तारामती ने कहा, ''महाराज! स्त्री का धर्म क्या है?''

राजा हरिश्चंद्र ने कहा, ''रानी! स्त्री का धर्म बड़ा विराट होता है। वह गृहस्थी की नैया होती है। उसका परिवार ही उसका धर्म होता है! वह पति की अर्द्धांगिनी होती है और उसके सुख-दु:ख की सहभागिनी भी होती है।''

तारामती ने कहा, ''मनुष्य भाग्य के हाथ का खिलौना है।''

''विधि का विधान सर्वोपरि होता है। वह न जाने क्या-क्या खेल दिखाता है।'' राजा हरिश्चंद्र ने कहा, ''उन अच्छे-बुरे दिनों में स्त्री ही पति का साहस होती है।''

तारामती अपने पति को परमात्मा समझती थी।

उसने एकाएक पूछा, "महाराज! मैंने सुना है कि आप कल शिकार खेलने जाएंगे।"

"हां रानी! राजा का यह भी एक धर्म है। शिकार के बहाने वनों का निरीक्षण करना। किसी नरभक्षी जंतु को खत्म करना। तपस्वियों के संकट को दूर करना। महारानी! राजा को अनेक कर्तव्य साथ-साथ निभाने पड़ते हैं।"

तारामती ने मुसकराकर कहा, "महाराज! जिस तरह राजा अपने कर्तव्य को निभाता है, उसी तरह रानी को भी अपने कर्तव्यों का पालन करना होता है।"

फिर तारामती और हरिश्चंद्र चौपड़ खेलने लगे।

बड़ी रात तक वे चौपड़ खेलते रहे।

रोहित खेलते-खेलते सो गया था। उसे एक दासी उठाकर ले गई।

जब चंद्रमा आकाश के बीचोबीच आ गया तब रानी ने राजा से सोने की आज्ञा चाही।

राजा ने मुसकराकर स्वीकृति दे दी।

दूसरे दिन राजा हरिश्चंद्र शिकार खेलने के लिए जाने लगे। तारामती उन्हें विदा करने आई। राजा ने तारा से कहा, "रानी! रोहित का ध्यान रखना।"

"आप कोई चिंता न करें!"

राजा शिकार को चला गया।

न जाने क्यों रानी तारामती उनके जाने पर उदास हो गई।

राजा एक बाघ का पीछा करते हुए घोर वन में पहुंच गया।

उसे एक स्त्री का स्वर सुनाई पड़ा, "रक्षा करो! रक्षा करो!"

राजा सहसा क्रोध में भर गया। उसने अपने-आपसे कहा—कौन दुष्ट है जो मेरे राज्य में स्त्रियों को सताता है?

थोड़ी देर बाद राजा को मालूम हुआ कि महर्षि विश्वामित्र घोर तपस्या करके उन विद्याओं को सीख रहे हैं जो स्वयं भगवान शिव को प्राप्त हैं, इसलिए सारी विद्याएं रो रही हैं।

राजा ने विश्वामित्र के पास जाकर प्रणाम करके कहा, "आप कौन

हैं? यदि आपने स्त्रियों को सताया तो मैं अपने बाणों से आपका विनाश कर दूंगा।''

महर्षि विश्वामित्र राजा की बात सुनकर क्रोध से भर आए। क्रोध में आते ही उनकी साधना भंग हो गई और रोती हुई विद्याएं लुप्त हो गईं।

विश्वामित्र ने कठोर स्वर में कहा, ''दुष्ट राजा, तू मुझे जानता नहीं! मैं विश्वामित्र हूं! मैं अपने तपोबल से तुम्हें भस्म कर दूंगा।''

''महामुनि! रक्षा करना मेरा धर्म है। मैंने अपने धर्म का पालन किया है। मुझ पर क्रोध करना व्यर्थ है। धर्म का पालन करने वाले का कर्तव्य है कि वह दान दे, रक्षा करे और युद्ध करे।''

विश्वामित्र ने क्रोध-भरे स्वर में कहा, ''धर्म के अनुसार, जो ब्राह्मणों में श्रेष्ठ है और दीन है उसे ही राजा दान करें! फिर तू मुझे इच्छा के अनुसार दान दे, क्योंकि मैं विवाह करना चाहता हूं।''

''आप अपनी मनपसंद वस्तु का दान ले सकते हैं। मैं आपको आपकी इच्छानुसार दान दूंगा।''

विश्वामित्र तो राजा को संकट में डाल देना चाहते थे। वे बोले, ''मुझे तुम्हारा राज्य, वैभव और खजाना सब कुछ चाहिए।''

राजा हरिश्चंद्र जरा भी नहीं घबराया। उसने विनती से सिर झुकाकर कहा, ''आपने जो-जो मांगा है, उसे मैं दान में देता हूं।''

विश्वामित्र प्रसन्न हो गए।

उन्होंने कहा, ''दान तो मैंने ले लिया, पर दान के बाद जो दक्षिणा दी जाती है, वह भी मुझे चाहिए।''

''मुनिवर! मैं आपको दक्षिणा भी दूंगा, पर अभी नहीं। अभी मैंने अपने पुत्र व पत्नी के अलावा अपना सब कुछ आपको दान दे दिया है। अब जैसे ही कोई व्यवस्था होगी, वैसे ही आपकी दक्षिणा भी दे दूंगा।''

राजा दु:खी मन से राजधानी लौट आया।

अपनी दीनता, व्याकुलता और चिंता को वह लाख चाहकर भी नहीं छुपा सका।

रानी तारामती ने राजा के भीतर के उथल-पुथल को पहचान लिया। वह पास आकर बोली, ''महाराज! क्या बात है?''

राजा ने तारामती का हाथ थामकर कहा, ''रानी! पत्नी अर्धांगिनी होती है। उसका पति की हर चल-अचल संपत्ति में आधा हिस्सा होता

है, पर मैंने तुमसे बिना पूछे ही अपना सारा राज्य, वैभव और खजाना विश्वामित्र को दान दे दिया। अब मैं एकदम निर्धन हो गया हूं। ऊपर से महर्षि ने मुझसे दक्षिणा और मांग ली है तथा मैंने उन्हें देने की प्रतिज्ञा भी कर ली है।''

तारामती अत्यंत बुद्धिमान, धीर-गंभीर नारी थी। उसने कहा, ''महाराज! मैं आपकी पत्नी हूं। मैंने मन-वचन-कर्म से अपने पतिव्रत धर्म का पालन किया है! आप चिंता को छोड़िए और सत्य के पालन के लिए तैयार हो जाइए।''

''पर कैसे?''

तारामती ने साहस के साथ कहा, ''महाराज! पतिव्रता स्त्री का धर्म है कि वह अपना रोम-रोम बेचकर भी अपने पति के धर्म का पालन करे। मैं यही करूंगी। मैंने नारी-जीवन का परम पद प्राप्त कर लिया है यानी मैं मां बन गई हूं। मेरे एक पुत्र भी है। सत्यवादी पुरुषों की स्त्रियां पुत्र उत्पन्न करके जीवन को सार्थक बना लेती हैं।''

''मैं तुम्हारा मतलब नहीं समझा!''

रानी तारामती की आंखें भर आईं। मोतियों के समान चंद आंसू टप-टप गिर पड़े।

वह भरे स्वर में बोली, ''स्वामी! आप मुझे बेचकर अपने सत्य की रक्षा कीजिए।''

''रानी!'' राजा के मुंह से एक चीख-सी निकल गई।

''हां महाराज, मैं आपको अपने वचनों से किसी भी कीमत पर गिरने नहीं दूंगी।''

''राजा को मूर्च्छा-सी आ गई। उसने साफ मना करते हुए कहा, ''नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। ऐसा करके मैं महापापी हो जाऊंगा।''

तारामती ने राजा के सिर पर हाथ फेरा और दुःखी होकर बोली, ''मेरे प्रभु! आप इतने विचलित और अधीर मत होइए। अब इस समस्या के तुरंत समाधान के लिए हमारे पास एक यही उपाय है। महल की एक-एक चीज दान हो चुकी है!'' उसी समय रोहिताश्व ने मां का आंचल पकड़कर कहा, ''मां! मुझे भूख लगी है।''

''बेटा! इस महल की हर चीज पर महर्षि विश्वामित्र का अधिकार है! मैं, तुम्हारी मां, अभी तुम्हें रोटी भी नहीं खिला सकती?''

अभी राजा-रानी बातचीत कर ही रहे थे कि महर्षि विश्वामित्र आ गए।

उन्होंने बिना किसी भूमिका के स्पष्ट शब्दों में कहा, ''राजन्! मेरी दक्षिणा दीजिए। अपने दिए गए वचनों का पालन करके सत्य की रक्षा करें, क्योंकि सत्य ही सर्वोपरि धर्म है।''

राजा हरिश्चंद्र से कुछ बोला नहीं गया, पर तारामती ने कहा, ''ऋषिवर! आपकी दक्षिणा की व्यवस्था शीघ्र ही हो जाएगी।''

''यदि सूर्य के डूबने तक व्यवस्था नहीं हुई तो मैं तुम्हें शाप दे दूंगा।''

''आप चिंता न करें, महर्षि! हम अपना सर्वस्व बेचकर भी आपकी दक्षिणा की व्यवस्था करेंगे, वह भी सूर्यास्त होने के पहले।''

विश्वामित्र चले गए।

फिर वही एकांत!

रोहिताश्व ने अपनी मां का आंचल पकड़कर कहा, ''मां! मुझे भूख नहीं है। मेरा पेट तो बस, यूं ही भर गया।''

तारामती का हृदय ममता से भर आया। उसने उसे सीने से चिपकाकर कहा, ''मेरे लाडले, तू भी अपने मां-बाप के संकट को समझता है!''

फिर वह रो पड़ी।

रोहित ने कहा, ''पिताजी! आप मुझे बेचकर इस ऋषि की दक्षिणा चुका दीजिए।''

एक बार राजा के नयन फिर भर आए।

तारामती ने राजा का हाथ पकड़कर कहा, ''महाराज, आप मेरी बात मान लीजिए। मुझे बेचकर आप विश्वामित्र की दक्षिणा दे दीजिए। इसी में हमारे कुल की भलाई है।''

''रानी! जो काम क्रूर से क्रूर मनुष्य भी नहीं कर सकता, उसे मैं करने जा रहा हूं! मुझे ईश्वर कभी क्षमा नहीं करेगा।''

''महाराज!'' तारामती ने कहा, ''पति परमेश्वर होता है। पति के लिए पत्नी जो कुछ भी उचित-अनुचित करे, वह धर्मसंगत होता है। महाराज! आप मुझे बेचकर अपने धर्म का पालन कीजिए।''

कोई उपाय न देखकर अंत में राजा हरिश्चंद्र पत्नी और पुत्र के साथ नगर के हाट की ओर चला।

थोड़ी देर में वह नगर के सबसे बड़े हाट में पहुंचा जहां विभिन्न चीजों की बोलियां लगाई जा रही थीं।

राजा ने खड़े होकर कहा, ''सुनो-सुनो...व्यापारियो! सुनो! मैं नीच प्राणी अपने धर्म का पालन करने के लिए अपनी पत्नी को बेचने आया हूं। किसी को दासी की जरूरत हो तो मेरी पत्नी को दासी बनाकर ले जा सकता है।'' राजा रो पड़ा।

तारामती की आंखें भी भर आईं।

रोहित की आंखों से भी आंसू टपक पड़े।

बार-बार आवाज लगाने के बाद, एक वृद्ध ब्राह्मण उसके पास आया। बोला, ''मुझे एक दासी की जरूरत है। मैं तुम्हारी पत्नी को खरीदना चाहता हूं। मैं धनवान हूं और मेरी पत्नी बहुत ही कमजोर है। उससे घर का काम-काज नहीं होता।''

राजा ने उसका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। उसने तारामती का मूल्य लेकर ब्राह्मण को सौंप दिया। ब्राह्मण उसका हाथ पकड़कर खींचने लगा तो रोहिताश्व ने मां का आंचल पकड़ लिया।

तारामती का हृदय विदीर्ण हो गया।

उसने रोहिताश्व को अपनी छाती से लगा लिया। ब्राह्मण जल्दबाजी कर रहा था, पर तारा को उसका बेटा छोड़ ही नहीं रहा था।

ब्राह्मण का हृदय भी पसीज गया।

तभी तारामती ने कहा, ''हे तात! कृपा करके आप मेरे बेटे को भी खरीद लीजिए। इससे आप मां-बेटे को अलग करने के पाप से बच जाएंगे। आपको बड़ा पुण्य होगा।''

ब्राह्मण को दया आ गई। उसने कुछ धन देकर रोहिताश्व को भी खरीद लिया।

राजा हरिश्चंद्र रोता रहा। उधर तारामती और रोहित भी बिलख-बिलखकर रो रहे थे।

उसी समय विश्वामित्र आ गए। उन्होंने तुरंत कहा, ''राजन्, सूर्य शीघ्र ही अस्त हो जाएगा। मुझे मेरी दक्षिणा दीजिए।''

पत्नी और पुत्र को बेचकर जो धन राजा ने इकट्ठा किया था, उसे विश्वामित्र को दे दिया। विश्वामित्र इतने थोड़े सिक्के देखकर जल-भुन गए। बोले, ''ओ नीच राजा...क्या मेरी दक्षिणा इतनी तुच्छ है! लग रहा

है कि तुझे मेरी क्रोध की अग्नि का शिकार होना ही है।''

''नहीं मुनिवर, अभी तो मेरी पत्नी व पुत्र ही बिके हैं। अब मुझे बिकना है।''

राजा ने अपने-आपको नीलाम करने के लिए आवाज लगाई।

एक चांडाल आया। वह बहुत ही घिनौना और विरूप था। उसने राजा को खरीदना चाहा।

राजा ने उससे कहा, ''मैं तुम्हारी नौकरी नहीं करूंगा। तेरा काम बहुत घृणित है।''

''मैं तुम्हें मुंह-मांगे रुपये दूंगा।''

उसी समय विश्वामित्र आ गए। राजा ने तुरंत उस चांडाल को कहा, ''लो, मुझे खरीद लो!''

चांडाल ने राजा को खरीद लिया। राजा ने अपने वचनों का पालन करने के लिए सारा धन विश्वामित्र को दे दिया।

विश्वामित्र उसे आशीर्वाद देकर चले गए।

राजा एकांत में विलाप करने लगा। उसे बार-बार अपनी पत्नी और पुत्र याद आ रहे थे। उसका कलेजा फटा जा रहा था।

उधर ब्राह्मण तारामती और रोहित को लेकर अपने घर आया।

उसकी पत्नी दासी को देखकर खुशी के मारे उछल पड़ी।

धनी ब्राह्मण ने कहा, ''देखो कल्याणी! मैं तेरे लिए कितनी सुंदर दासी लाया हूं। साथ में छोटा-मोटा काम करने के लिए यह बच्चा भी! कितना आनंद रहेगा जीवन में!''

कल्याणी ने अपने पति की ओर देखकर कहा, ''आज आपने मेरे मन की इच्छा पूरी की है। अब मैं चैन से रहूंगी, वरना घर का काम-काज करते-करते तो मैं मर जाती थी।''

ब्राह्मण की बहुत सुंदर हवेली थी। बहुत बड़ी नहीं, पर छोटे परिवार के लिए अत्यंत उपयोगी। बस, उस घर में कमी थी तो केवल दास-दासियों की।

कल्याणी ने तारामती की ओर देखकर कहा, ''क्या नाम है तेरा?''

''मेरा नाम तारामती है।''

''दासी का क्या इतना बड़ा नाम होता है, यह तो रानियों जैसा नाम है!''

रोहित तड़ाक से बोला, ''मेरी मां सचमुच रानी है!''

''चुप, रोहित।'' रानी ने टोका।

''रानी जरूर है, पर दासियों की। ऐ महारानी तारामती! कान खोलकर सुन ले, मैं तुझे तारा कहूंगी। तारामती कहते-कहते तो मेरी जीभ ही घिस जाएगी।'' कल्याणी का स्वर बड़ा ही कठोर था। वह कड़वे स्वर में फिर बोली, ''मेरी पुकार पर तुरंत आ जाना।''

ब्राह्मण ने कहा, ''कल्याणी! यह कितनी सुंदर है!''

''ओह!'' कल्याणी ने तेवर बदलते हुए कहा, ''तुम इसलिए इसे लाए हो? सुन लेना—कभी ऐसी-वैसी बात की तो मैं तुम्हारा मुंह नोच लूंगी। मैं...अरी ओ तारा...जरा सुन तो!''

तारामती आई।

''तू कान खोलकर सुन ले, यहां अधिक सज-संवरकर मत रहना। ये पुरुष बड़े ही पापी और चरित्रहीन होते हैं।''

तारामती ने कहा, ''स्वामिनी! जो अपने पति के धर्म और सत्य की रक्षा के लिए अपने को दासी बना सकती है, वह स्त्री अब किसके लिए सजे-संवरेगी? स्वामिनी! आप किसी बात की चिंता न कीजिए।''

कल्याणी ने हवा में हाथ मारते हुए कहा, ''मैं चिंता-विंता करने वाली नहीं हूं। यदि मुझे जरा भी संदेह हुआ तो मैं तेरे सुंदर मुखड़े पर डांभ चिपका दूंगी। तूने मेरा गुस्सा नहीं देखा है। सुन! जल्दी से जाकर खाना बना ले।''

तारामती चलने लगी कि उसे रोकते हुए कल्याणी ने कहा, ''अरे कुलच्छनी, खाना क्या बनाएगी, यह तो पहले पूछ!''

तारामती सिर झुकाकर खड़ी हो गई।

''जा हलवा-पूड़ी बना ले। अजी स्वामीजी, आप सुनते हैं—हलवा-पूड़ी! आज तो मैं अच्छी तरह अपना पेट भरूंगी...और तू अपने इस चमगादड़ को कह दे, तारा कि वह हवेली के पीछे जो बगीचा है, उसमें झाड़ू लगा दे।''

''स्वामिनी!'' तारामती ने हाथ जोड़कर कहा, ''मैं सारे काम कर लूंगी। अभी तो रोहित बड़ा ही नादान है।''

कल्याणी एकदम भड़क उठी। उसने लपककर तारामती के बाल पकड़ लिए और उन्हें खींचते हुए कहा, ''निखट्टू! जबान लड़ाती है। जैसा कहूं, वैसा ही कर। तेरे बेटे के भी कलदार दिए हैं।''

रोहित ने कहा, ''मेरी मां के बालों को छोड़ दीजिए—मैं सब काम कर लूंगा।''

कल्याणी ने रोहित की ओर आग-भरी दृष्टि डालकर कहा, ''जैसा मैं कहूं वैसा ही करना, नहीं तो दोनों की चमड़ी उधेड़ दूंगी।''

तारामती ने आंसू पोंछते हुए कहा, ''ठीक है।''

राजा हरिश्चंद्र काशी के गंगा-तट पर बने श्मशान पर पहरा लगाता था। भाग्य ने उसे राजा से चांडाल बना दिया था।

चांडाल ने उसे मुरदा जलाने का तरीका बता दिया था।

राजा रात-दिन मुरदे की प्रतीक्षा करता रहता था। बिना कफन व दस्तूरी लिए वह किसी को भी शव फूंकने नहीं देता था।

नियमानुसार जो पैसा मिलता था, उसका छह भाग राजा को जाता था, तीन भाग चांडाल को और एक भाग हरिश्चंद्र का वेतन होता।

राजा अपने कर्तव्य का पालन करता रहता था। फिर भी वह रात-दिन अपनी पत्नी तारामती और पुत्र रोहित के लिए तरसता रहता था।

वह सोचता था कि जो तारामती फूलों के रास्तों पर चलती थी, मखमली शय्या पर सोती थी, जिसके एक संकेत पर दस-दस दासियां उपस्थित हो जाती थीं, वह आज स्वयं दासी का काम कर रही है। जरूर उसके हाथों में बड़े-बड़े छाले हो गए होंगे। जरूर उसका कठोर हृदय स्वामी उसे तरह-तरह से प्रताड़ित करता होगा...और मेरा रोहित...हे प्रभु! उस कोमल बालक पर न जाने कौन-कौन-से अत्याचार होते होंगे।

तभी एक शव आ गया।

शव किसी गरीब आदमी का था। शायद वह युवा था, इसलिए सारे लोग जोर-जोर से करुण क्रंदन कर रहे थे।

उसके पीछे-पीछे पागल-सी उस मृतक की पत्नी आ रही थी। वह सिर पीट-पीटकर रो रही थी।

शव श्मशान के पास पहुंचा।

चांडाल बने राजा ने कहा, ''कौन मरा है, भाई? किस जाति का है?''

एक व्यक्ति ने कहा, ''इस दुखियारी का पति है। यह एक साधारण बुनकर है। इसलिए कफन तो हम ले आए।''

''और दस्तूरी के पैसे?'' राजा ने पूछा।

''वह तो इस गरीब के पास नहीं है।''

चांडाल बने राजा हरिश्चंद्र ने कहा, ''भाई! मैं ठहरा एक दास। मैं अपने स्वामी के प्रति विश्वासघात कभी नहीं कर सकता। शास्त्रों ने कहा है—जो सेवक अपने स्वामी के प्रति छल-कपट करता है, वह भयंकर नरक पाता है।''

''पर यह बेचारी दस्तूरी लाएगी कहां से? अत्यंत दरिद्र और अभावग्रस्त है।''

''यह सही है, पर मैं किसी भी मूल्य पर अपने स्वामी के साथ विश्वासघात नहीं कर सकता।''

उस मृतक की स्त्री उसके पास आई। वह बिलखकर बोली, ''तुम मनुष्य नहीं राक्षस हो! राक्षस ही इतना निष्ठुर हो सकता है।''

''तुम मुझे कुछ भी कहो, पर मैं यह नहीं होने दूंगा। बिना दस्तूरी लिए मैं इस शव को नहीं जलाने दूंगा।''

''ओह! निष्ठुर! यदि कोई तेरा सगा भी इस मरघट पर आएगा तो क्या तू उसके साथ भी इतना ही कठोर व्यवहार करेगा?''

''हां, जो सेवक अपने धर्म को त्यागता है, वह जीवन-भर कष्ट पाता है।''

राजा हरिश्चंद्र ने दृढ़ता से कहा।

वे लोग हारकर गंगा के पास गए और शव का जलदाह कर दिया। पर न जाने क्यों राजा हरिश्चंद्र शंकाओं से घिर गया।

उसकी पत्नी तारामती और उसका बेटा रोहित अभी क्या कर रहे होंगे—वह सोचने लगा।

तारामती काम करके थक गई थी। उसका रंग-रूप और स्वास्थ्य बिगड़ गया था।

कल्याणी के कठोर व्यवहार से उसकी पहचान तक मिट गई थी।

सुबह से लेकर शाम तक वह कोल्हू के बैल की तरह उस ब्राह्मण के घर पर काम करती थी। फिर भी उसे और उसके लाडले बेटे रोहित को अपशब्द सुनने पड़ते थे।

तारामती पति की स्मृति में खोई हुई जीवन के एक-एक पल को बोझ की तरह जी रही थी।

अभी वह बरतन मलकर आई थी कि कल्याणी ने कहा, ''ओ महारानी! जरा इधर आ तो।''

''क्या बात है, स्वामिनी?''

''देख, तू तो मेरे साथ बाहर चल, मुझे हाट से सामान लाना है। और अपने इस राजकुमार को कह दे कि जो बगीचे के पास गुंभार (तहखाना) है, उसे साफ कर ले।''

तारामती ने कल्याणी की ओर देखकर कहा, ''स्वामिनी! बच्चा आज सुबह से काम कर रहा है, बहुत ही थक गया है। फिर सूर्य ढल रहा है, इसलिए गुंभार में अंधेरा-सा होने लगा है। कहीं किसी सांप-बिच्छू ने डस लिया तो...''

''तो कौन-सी प्रलय हो जाएगी! अरे निठल्लो! दो-दो सेर धान खाते हो और काम के नाम पर भांति-भांति के बहाने करते हो? बेटे से इतना ही प्यार था तो क्यों पैसे लिए? क्यों बेचा इसके निर्दयी बाप ने?...अरे, ओ राजकुमार!''

रोहित भागता हुआ आया।

वह आकर बोला, ''क्या है?''

''सुन! हम लोग घाट जा रहे हैं। तुम गुंभार साफ कर लेना। यदि यह काम नहीं किया तो तेरा और तेरी मां का भोजन बंद।''

रोहित उंगली हिलाकर बोला, ''नहीं...आप मेरा भोजन बंद कर दीजिए...पर मेरी मां का नहीं। मेरी मां बहुत ही दुर्बल हो गई है। इसका भोजन बंद मत कीजिए।''

''फिर गुंभार साफ करके रखना।''

''कर दूंगा।''

''देखा, कितना अच्छा है तेरा बेटा!'' उस कठोरहृदया कल्याणी ने कहा, ''बेटा हो तो ऐसा। अभी से मां का कितना ध्यान रख रहा है!''

तारामती ने हाथ जोड़कर कहा, ''स्वामिनी! इस पर दया कीजिए।

हम दोनों मिलकर कल आपका गुंभार साफ कर देंगे।''

तभी ब्राह्मण आ गया।

उसने उसे अनुनय-विनय करते देखकर कहा, ''क्या बात है, तारा?''

तारा ने बात बताकर कहा, ''आप इन्हें समझाइए।''

कल्याणी भड़क उठी। बोली, ''यह मरा बूढ़ा मुझे क्या समझाएगा? मैं जानती हूं कि इसकी नीयत तेरे लिए खोटी है और तू भी अपने पति द्वारा बेची जाकर तरह-तरह के नाटक करती रहती है।''

ब्राह्मण तो 'शिव-शिव' कहता वहां से खिसक गया।

कल्याण ने तारामती को एक चांटा मारकर कहा, ''अपने इस कामचोर लाडले को समझा दे, वरना मैं एक दाना भी खाने को नहीं दूंगी।''

रोहित ने कहा, ''आप चिंता न करें। मैं गुंभार साफ कर दूंगा।''

वे दोनों चली गईं।

बाजार में तारामती प्यासी निगाहों से सुंदर-सुंदर वस्तुओं को देखती रही। कभी इतनी अमूल्य चीजें वह अपने दास-दासियों को दे देती थी, उन्हीं चीजों के लिए वह आज स्वयं तरस रही है! वाह रे भाग्य! पल में राजा को रंक और रंक को राजा बना देता है।

वाह रे सत्य! तेरी रक्षा के लिए अपना सर्वस्व अर्पण करने वाले क्या इस तरह विपत्ति में जीएंगे और कष्ट भोगेंगे? कौन तुम्हारे लिए सब कुछ त्यागकर दान देगा? लोग सत्य बोलना ही छोड़ देंगे? सत्य के नाम से लोगों को चिढ़ हो जाएगी।

इस तरह वह विचारों में खोई थी कि उसे ठोकर लग गई। ठोकर लगते ही वह गिर पड़ी और उसके हाथ से शीशे का सुंदर खिलौना गिरकर टूट गया।

कल्याणी ने घूमकर देखा तो उसका खून खौल उठा। तारामती के कहां चोट आई है, इसकी चिंता किए बिना उसने उसे भद्दी-भद्दी गालियां निकालकर लातों से मारना शुरू कर दिया।

तारा रोती-कराहती रही।

लोगों ने बीच-बचाव किया।

उसी समय ब्राह्मण भागता हुआ आया और उसने घबराकर कहा,

''जल्दी चलो, रोहित को सांप ने काट लिया है!''

''क्या?'' तारामती अपनी पीड़ा को भूलकर 'रोहित-रोहित' करती भागी।

उसके पीछे-पीछे ब्राह्मण भागा। कल्याणी अपने सामान को संभालती हुई बड़बड़ा रही थी, ''हाय मेरा कांच का मोर टूट गया...कितना सुंदर बना हुआ था! हाय मेरी माला के मोती बिखर गए...सांप ने बच्चे को काट लिया तो मर थोड़े ही जाएगा।''

तारामती घर पहुंची। रोहित सांप काटने से तड़प रहा था। उसका सारा शरीर नीला पड़ गया था। उसकी चेतना लुप्त हो गई थी। ब्राह्मण वैद्य को बुलाने चला गया था।

तारा अपने बेटे को झिंझोड़कर बोली, ''बेटे, मेरी आंखों के तारे...रोहित...बोल...बोल बेटे! बोल...''

रोहित नहीं बोला।

''बोल, मेरे लाल! बोल! देख, तुझे तेरी मां...मेरे लाडले...अपनी मां को इस तरह बिलखता छोड़के मत जा...हे भगवान! तू मेरे प्राण ले ले, मेरे बेटे रोहित को ठीक कर दे।''

उसी समय कल्याणी आ गई। वह अब भी बड़बड़ा रही थी।

उसे देखते ही तारामती बारूद की तरह फटकर बोली, ''देखा... तुम्हारे हठ का फल! मैंने बार-बार कहा कि अंधेरे में बच्चे को गुंभार में मत डालो, पर तुम नहीं मानीं। अपने हठ पर अड़ी रहीं और इस फूल-से नन्हें बच्चे को जहरीले सांप ने काट खाया...इसका रंग काला हो गया है...पापिन! ईश्वर तुम्हें इसका दंड देगा।''

कल्याणी कुछ बोले, इसके पहले की तारामती फिर बोली, ''तेरे कोई बाल-बच्चा नहीं है न, इसलिए तू ममता की पीड़ा को क्या जाने? ओह! भगवान तुझे कभी भी क्षमा नहीं करेगा।''

उसी समय ब्राह्मण वैद्यजी को लेकर आ गया। वैद्यजी ने रोहित का हाथ अपने हाथ में लिया।

तारामती ने बिलखकर कहा, ''वैद्यराज, मेरे बच्चे को बचा लीजिए! यदि इसे कुछ हो गया हो गया तो मैं इसके पिता को क्या मुंह दिखाऊंगी। आपको भगवान यश और धन देगा। यदि कभी मेरा समय वापस आया तो मैं तारामती...आपको मुंहमांगा पुरस्कार दूंगी।''

वैद्यजी ने बच्चे को हिला-डुलाकर देखा। फिर गरदन लटकाते हुए कहा, ''यह तो मर चुका है। मरे हुए को सिवाय ईश्वर के कोई भी नहीं जीवित कर सकता।''

तारामती दहाड़ मारकर रो पड़ी। वह रोहित से लिपट-लिपटकर विलाप करने लगी।

ब्राह्मण ने कल्याणी की ओर देखकर कहा, ''शायद तेरे बांझ रहने के पीछे सचमुच तेरे ये ही पाप हैं। तूने अपने हठ के कारण इसकी एक तरह से क्रूर हत्या की है— भगवान तुझे कभी क्षमा नहीं करेगा। जो नारी करुणा, दया, त्याग और उपकार से हीन होती है, वह नारी के रूप में दानवी होती है। तूने आज इसकी गोद सूनी कर दी है, अब तेरी गोद सात जन्मों तक सूनी ही रहेगी।''

तारामती तो बस, रोए ही जा रही थी।

फिर अचानक उसने रोहित के शव को गोद में लिया और बोली, ''मैं इसका दाह-संस्कार करने जा रही हूं।''

ब्राह्मण ने कहा, ''मैं भी चलता हूं। दाह-संस्कार की दस्तूरी भी देनी होगी।''

''नहीं! मैं तुम क्रूरजनों की छाया भी अपने पुत्र के शव पर नहीं पड़ने दूंगी। मैं अपने बेटे को स्वयं श्मशान-घाट ले जाऊंगी!'' तारामती सुबक पड़ी. उसकी आंखें भर-भर आईं। अपने रोहित को सीने से लगाकर उसने कहा, ''चल मेरे लाल! मैं तुझे अपने पड़ाव पर पहुंचा दूं।''

वह रोहित को लेकर चल पड़ी।

राजा हरिश्चंद्र घाट पर चांडाल बना हुआ पहरा दे रहा था।

वह काफी बेचैन और परेशान था।

कल रात उसने भयंकर सपना देखा था। लगता था कि कुछ अशुभ घटने वाला है।

उसी समय तारामती श्मशान-घाट पर पहुंच गई।

इन बारह महीनों के कष्टों से दोनों के रंग-रूप बदल आए थे। कोई किसी को नहीं पहचान सका। राजा की जटाएं बढ़ गई थीं— कांतिहीन चेहरा, धंसी हुई आंखें।

तारामती ने अपने बच्चे को जमीन पर लिटा दिया। उस नन्हे सुंदर बच्चे का शव देखकर राजा दया से भर आया।

उसे अपना पुत्र याद हो आया— यदि वह जीवित होता तो इतना ही बड़ा होता।

तारामती ने बिलखकर कहा, ''मेरे लाडले! सत्य के लिए सर्वस्व त्यागने के बाद भी मुझे यह महादु:ख क्यों प्राप्त हुआ है? यदि मेरे स्वामी आज होते तो मेरे दु:ख को बांट सकते थे। राजपाट जाता रहा! बंधु-बांधव बिछुड़ गए! स्त्री-पुत्र बिक गए— ऐसे राजा हरिश्चंद्र को ऐसा दुरूह दंड किन पापों के बदले मिला...''

राजा फिर भी अपनी पत्नी व पुत्र को न पहचान सका। उसे ऐसा लगा कि वह स्त्री शायद उसके घर में कभी दासी रही होगी।

उसने उसके समीप जाकर गौर से देखा तो वह आर्तनाद कर उठा, ''यह तो प्राणप्रिया तारामती है! और यह मेरा प्रिय पुत्र रोहिताश्व है...हा! मेरे लाडले...''

और दोनों विलाप करने लगे।

रानी तारामती ने पुत्र के दाह-संस्कार के लिए कहा तो राजा को वह स्त्री याद हो आयी जिसने कहा था कि कभी तेरा अपना कोई आए तो उसको भी दस्तूरी लिए बिना दाह-संस्कार नहीं करने देना! हा...क्या ईश्वर स्वयं उसकी इतनी परीक्षा लेने पर आ गया है?

उसने अपने हृदय को कठोर करके कहा, ''रानी! मैं पुत्र का भी दाह-संस्कार बिना दस्तूरी लिए नहीं कर सकता। यदि ऐसा करूंगा तो मेरे सत्य की प्रतिज्ञा भंग होगी।''

''नाथ! यह आपका पुत्र है। आप नीच से नीच मनुष्य के कर्म करके भी सत्य का ढिंढोरा पीट रहे हैं?'' तारामती आवेश में आ गई। वह तीखे स्वर में बोली, ''हे धर्म और सत्य का गुण गाने वाले सत्यवादी हरिश्चंद्र, क्या आप बता सकते हैं कि यदि धर्म ऐसा ही है तो इस धर्म का क्या लाभ है? ब्राह्मण, पशु, पक्षी, सत्य, नैतिकता, दया एवं करुणा के स्वामी आप जैसे राजा को यदि चांडाल बनना पड़े तो धिक् है ऐसे धर्म और दान-पुण्य को। आप मेरे बच्चे का दाह-संस्कार कीजिए...सत्य की टेक छोड़कर सब कुछ कीजिए! वह सब जो एक चांडाल करता है!''

''नहीं, रानी। चांडाल-वृत्ति धारण करने से ही क्या हरिश्चंद्र चांडाल हो गया? सत्य के लिए सर्वस्व विसर्जन करने वाला राजा हरिश्चंद्र अंत में सत्य को छोड़ेगा? नहीं, नहीं रानी, कदापि नहीं!''

तारामती ने रोते हुए कहा, ''तो फिर मुझे भी अपने पुत्र के साथ जला दीजिए!''

''हां रानी! मैं भी कष्ट सहते-सहते थक गया हूं। फिर तुम्हारा और पुत्र का वियोग अब मुझसे नहीं सहा जाता। चांडाल की दासता करते-करते मैं ऊब गया हूं। रोहित के साथ ही मैं भी अपने प्राणों का त्याग करूंगा...''

''प्राणनाथ! यदि आप प्राण त्याग देंगे तो मैं भी आपके साथ चिता में जलकर अपने को समाप्त कर दूंगी। मैं तो आपके साथ ही स्वर्ग-नरक का भोग करूंगी।''

''हे पतिव्रते! जैसी तुम्हारी इच्छा है, वैसा ही होगा।''

राजा ने चिता बनाई। उस पर अपने बेटे को सुलाकर वह भगवान विष्णु का चिंतन करने लगा। जब तीनों चिता में बैठकर जलने को तैयार हुए तभी धर्म और देवराज इंद्र उपस्थित हो गए।

देवराज इंद्र ने कहा, ''हे सत्यशिरोमणि राजा हरिश्चंद्र! तुम्हारे त्याग ने समस्त लोकों को जीत लिया है। तुम्हारी परीक्षा भगवान और स्वयं धर्म ले रहा था। तुम परीक्षा में सफल हुए। तुम अपनी इच्छा के अनुसार किसी भी देवलोक को पा सकते हो।''

''मैं अपनी अयोध्या लौट जाना चाहता हूं, देवराज! मेरी प्रजा मेरे लिए व्याकुल है।''

तभी विश्वामित्र आ गए। उन्होंने कहा, ''राजा, तुम धन्य हो! तुम्हारी रानी धन्य है। तारामती, तुम कहां जाना चाहती हो?''

''जहां मेरे पतिदेव जाएंगे।''

महर्षि विश्वामित्र ने तारामती से कहा, ''वस्तुत: पति के सुकर्मों में पत्नी का हाथ होता है। यदि तारामती, तुम न होतीं तो राजा हरिश्चंद्र इस अग्निपरीक्षा में सफल नहीं होते।

तारामती ने राजा को देखा।

देवताओं ने पुष्प-वर्षा की।

दमयंती

भगवान सूर्य विदर्भ देश के गगनचुंबी प्रासादों, हवेलियों तथा घरों पर अपनी पवित्र किरणें बिखरा चुके थे।

कई लोग अपने-अपने घरों की छतों पर खड़े होकर सूर्य भगवान को अर्घ्य चढ़ा रहे थे। मंदिरों में घंटध्वनियां हो रही थीं।

विदर्भ के राजा भीम के महल के चारों ओर वाटिकाएं थीं। उनमें शुक-सारिकाएं और मोर टुहुकने लगे थे।

नगर के बाहर एक सरोवर था।

आम, अंगूर और अन्य फलों तथा बेला, चमेली, चंपा आदि फूलों से सुगंधित वाटिका के बीचोबीच यह सरोवर था। सरोवर सुंदर और बहुत बड़ा था। इसमें नगर के बाहर की नदी से एक जलधारा लाकर छोड़ दी गई थी। इससे सरोवर में सदा पानी भरा रहता था।

दमयंती अपनी सखियों के साथ जलक्रीड़ा करने के लिए आई थी। जल में इत्र डाल दिया गया था, जिससे वह महक उठा था। दमयंती जल में स्नान करने लगी। केशिनी, सुहासिनी और वन्या नामक सहेलियां उससे उपहास कर रही थीं।

केशिनी दमयंती के रूप-यौवन की प्रशंसा कर रही थी। मीठी चुटकियों से चिढ़कर दमयंती ने कहा, ''क्यूं री केशिनी, तेरी जबान तो आजकल बड़ी लंबी हो गई है!''

''नहीं स्वामिनी, ऐसी कोई बात नहीं है। सच, कल एक पंडित अपने महाराज से कह रहा था, ''इतनी तेजस्वी, गुणागर और रूपवती कन्या इस पृथ्वी पर कोई नहीं है। आप इसके विवाह की जरा भी चिंता न करें। दूल्हा अपने-आप मिल जाएगा!

''महाराज बोले, 'यह कैसे हो सकता है, पंडितजी! पुत्री राजा की हो या रंक की, युवा होने पर सबको एक ही चिंता हो जाती है। हर बाप

सोचने लगता है कि कैसे मैं इसके लिए योग्य वर ढूंढूं। कैसे मेरे सिर से यह बोझा हलका हो।'

" 'आप ठीक कह रहे हैं, महाराज।' पंडित ने गंभीर स्वर में कहा, 'किंतु जो कन्या देवताओं और यक्षों के बीच भी चर्चित हो उसे मनुष्यों में श्रेष्ठ वर क्यों नहीं मिलेगा?'

" 'फिर भी आप कोई नाम तो बताइए।' पंडित ने अनेक नरेशों के नाम गिना दिए। अंत में पंडितजी राजा नल का नाम लेते समय गर्व से तन गए।

" 'महाराज! इस पृथ्वी पर नल से श्रेष्ठ कोई वर नहीं है। धीरवान, बलवान, रूपवान, गुणवान, विद्वान, वेदों का ज्ञानी, गो-ब्राह्मणों का पालक। राजा नल से राजकुमारी दमयंती का विवाह हो जाए तो सोने में सुहागा हो जाए।' सखि दमयंती, तुम्हारा क्या विचार है?"

दमयंती का मुख लज्जा से लाल हो गया। वह झट-से डुबकी लगा बैठी।

सारी सखियां खिलखिलाकर हँस पड़ीं।

फिर दमयंती तैरकर एक संगमरमर की चौकी पर बैठ गई। विचारने लगी—सच, राजा नल महान योद्धा हैं। संसार में श्रेष्ठ और अनुपम हैं। एक बंजारा कह रहा था कि राजा नल जब रथ पर सवार होकर चलते हैं तब उनकी गरिमा देवताओं जैसी हो जाती है।

और दमयंती के हृदय में नल के प्रति प्रीति गहराती जा रही थी। वह उनकी स्मृति में खो गई।

सुहासिनी ने हथेली में पानी भरकर दमयंती पर फेंका, दमयंती चौंक पड़ी। सखी ने झट-से पूछा, "क्या बात है, कहां खो गई थीं?"

दमयंती ने कहा, "खोती कहां? यहीं तो बैठी हंसों की क्रीड़ाएं देख रही हूं। देखो, हंस आज कैसे नयनाभिराम नृत्य कर रहे हैं?"

"कौन-से हंस?" वन्या ने मुसकराकर कहा, "मानसरोवर के हंस या बाहर के सरोवर के हंस?"

तभी केशिनी ने पानी उछालकर कहा, "मैं बताऊं, नयन-सरोवर के हंस! जैसे प्रसन्न होकर कह रहे हैं—हम स्वयं राजा के सपनों में खोए हुए हैं, हम चाहते हैं कि वही तुम्हारे स्वामी बनें।"

दमयंती ने बनावटी गुस्से में कहा, ''तुम सबका मस्तिष्क फिर गया है। जिस व्यक्ति को मैंने देखा तक नहीं, उसको वर कैसे मानूंगी!''

''प्रत्यक्ष भले न देखा है, सपने में तो कई बार देख चुकी हैं आप।''

तभी वन्या आश्चर्य-भरे स्वर में बोली, ''देखो, देखो, उस हंस को देखो! सभी हंसों से अलग है, अनुपम है।''

सबकी दृष्टि उस ओर उठ गई। देखा— स्वर्णिम पंखों वाला एक हंस कुल-कुल करता हुआ उस सरोवर में तैर रहा है।

दमयंती के मुख से हठात् निकला, ''अनुपम! ऐसा हंस मैंने कभी नहीं देखा।''

सुहासिनी ने प्रस्ताव रखा, ''इसे पकड़ लिया जाए तो आनंद आ जाए।''

''पर पकड़ेगा कौन?'' केशिनी ने कहा।

इस पर दमयंती ने कहा, ''जो पकड़ेगा, उसे मैं मोतियों का हार दूंगी।''

फिर क्या था! सारी सखियां जल में डुबकी लगा बैठीं।

वन्या बहुत ही चंचल थी। तैरना उसे बहुत अच्छी तरह आता था। उसने एक ऐसा लंबा गोता लगाया कि हंस को पकड़ लिया।

दमयंती रूपवती होने के साथ-साथ गुणवती भी थी। पक्षियों की भाषा समझती थी।

हंस पकड़कर दमयंती के पास लाया गया तब दमयंती ने उससे पूछा, ''अरे, तुम कौन-से हंस हो? यहां कैसे आ गए?''

हंस ने पंख फैला दिए। उसने अपनी चोंच को भिड़ा-भिड़ाकर बोलना शुरू किया।

दमयंती उसकी भाषा समझ गई। वह प्रफुल्लित होकर बोली, ''अरे, यह तो राजहंस है! बेचारा भटककर यहां आ गया।''

राजहंस ने एक पल नृत्य-सा किया। फिर बोला, ''मैं भटककर नहीं आया हूं। मैं तो संदेशवाहक हूं!''

अब सब सखियां सचेत हो गईं। उनके कान खड़े हो गए।

दमयंती भी गंभीर हो गई। पूछ बैठी, ''किसके संदेशवाहक हो?''

''राजा नल के!''

दमयंती के मुंह से हठात् निकल पड़ा, ''राजा नल के? निषध-नरेश राजा नल के?''

हंस ने अपना सिर हिलाया।

दमयंती का मुख लाल हो गया। हंस ने मुग्ध स्वर में कहा, ''राजकुमारी दमंयती, राजा नल का रूप अश्विनी कुमार के अनुरूप है। मनुष्यों में उसकी जोड़ का दूसरा नहीं है। वह तुम्हारे प्रणय में आकुल है और तुम्हें अपनी पत्नी बनाना चाहता है। तुम दोनों इस पृथ्वी पर उत्तम हो, इसलिए तुम दोनों का विवाह भी सर्वश्रेष्ठ होगा।''

दमयंती सब कुछ भूल गई। उसके मन में भी नल की प्रीति भर गई। वह खो गई अपने-आपमें। बोली, ''मैं भी यही चाहती हूं। आप निषध-पति को कहिएगा कि दमयंती भी आपके चरणों की दासी बनकर अपने को धन्य समझेगी।''

राजहंस ने पंख फड़फाड़ाए और उड़ चला।

दमयंती चौंककर बोली, ''अरे, केशिनी, राजहंस कहां गया?''

सुहासिनी हँसकर बोली, ''सखि, वह उड़ गया। राजा नल को आपका संदेश देने चला गया। कोई बात नहीं, दोनों ओर एक-सी लगन है।''

सचमुच दमंयती कहीं खो गई थी। उसे कुछ भी ध्यान नहीं रहा कि उसने राजहंस से क्या-क्या कहा, पर लज्जा से उसका मुख गुलाब-सा हो गया और नयन झुक गए।

इसके बाद वे सब हँसी-ठिठोली करती हुई प्रासाद की ओर चल पड़ीं।

आधी रात हो गई थी। चंद्रमा नभमंडल के बीचोबीच चमक रहा था। शीतल मनभावन हवा चल रही थी।

दमयंती अपने महल के बरामदे में बैठी थी— उदास और खोई-खोई। उसे लगने लगा था कि एकांत उसके लिए दु:खदायी है। लंबी रात नागिन-सी काटने को दौड़ती है। उसे कुछ भी अच्छा नहीं लगता।

उसका मन न किसी मनोरंजन में लगता था और न किसी हँसी-खेल में। उसे अपनी सखियों की हँसी-ठिठोली भी नहीं सुहाती थी। वह चाहती

थी, वही दु:खदायी एकांत, जहां वह राजा नल के बारे में सोचती रहे। वह रात-रात-भर नहीं सोती थी। मनोरंजन उसे अरुचिकर लगने लगा था।

एक दिन विदर्भ-नरेश भीम अचानक दमयंती के कक्ष में आ गए।

दमयंती ने झुककर प्रणाम किया।

राजा भीम का आशीर्वाद के लिए उठा हुआ हाथ उठा ही रह गया।

"क्या बात है, बेटी? तुम्हारा चेहरा पीला क्यों है? तुम इतनी दुर्बल क्यों हो गई हो? तुम्हारे नयनों में पीड़ा क्यों झलक रही है?"

दमयंती पिता द्वारा एक साथ पूछे गए इतने प्रश्नों को सुनकर लज्जित हो गई। उसके मुंह से एक ठंडी उच्छ्‌वास निकली।

राजा भीम ने तुरंत अपनी रानी को बुलाया।

रानी व्यग्र हो उठी—क्या बात है? वह भागकर आई।

"क्या बात है, महाराज?"

महाराज ने कहा, "अपनी बेटी को देखो। कितनी दुर्बल हो गई है!"

रानी ने दमयंती को देखा तो सन्न रह गई। उसकी बेटी इतनी दुर्बल हो गई! इसे क्या हो गया है अचानक?

उसने राजा से कहा, "महाराज, यह अचानक इतनी दुबली कैसे हो गई?"

राजा कुछ देर तक विचारता रहा। फिर बोला, "आज मैंने जाना कि राजा और रानी योग्य मां-बाप नहीं बन सकते।"

रानी के नयन तरल हो गए। वह भी व्यथित स्वर में बोली, "हां महाराज, मैं तो कई दिनों से इधर आई ही नहीं।" फिर वह दमयंती के निकट जाकर बोली, "बेटी, क्या बात है? तुम्हें कौन-सा रोग हो गया है?"

दमयंती ने कहा, "मैं बिलकुल ठीक हूं, मां! मुझे कोई रोग नहीं है।"

तभी केशिनी ने कुछ कहना चाहा तो दमयंती ने आंखें तरेरकर उसे शांत कर दिया।

रानी उस संकेत का अर्थ समझ गई। उसने महाराज से वहां से जाने के लिए प्रार्थना की।

राजा चला गया।

रानी ने दमयंती के सिर पर दुलार-भरा हाथ फेरकर कहा, ''बेटी! मां से आज तक किसी ने कुछ नहीं छुपाया? सच-सच बता, क्या बात है?''

दमयंती की आंखों से झर-झर आंसू बहने लगे। उससे कुछ भी नहीं कहा गया। केवल सुबकियां-ही-सुबकियां।

तब केशिनी ने सिर झुकाकर कहा, ''रानीजी, आप आज्ञा दें तो मैं कुछ निवेदन करूं।''

दमयंती नहीं चाहती थी कि केशिनी कुछ कहे, पर रानी की आज्ञा का पालन करना केशिनी का पहला कर्त्तव्य था।

केशिनी ने कहा, ''रानीजी, राजकुमारी दमयंती को सबसे बड़ा रोग यह लगा है कि वह युवा हो गई हैं।''

रानी को सारी बात एक पल में समझ में आ गई।

उसने पश्चात्ताप प्रकट करके कहा, ''आह! मैं कितनी नादान मां हूं! अपनी बेटी को अब भी बच्ची समझ रही हूं। अब मैं तुरंत ही स्वयंवर का आयोजन कराऊंगी ताकि मेरी बेटी अपना मन-पसंद वर चुन सके।''

रानी चलने लगी तो केशिनी बोली, ''महारानीजी, निषध के राजा नल को अवश्य बुलाइएगा।''

रानी अब मुसकरा पड़ी।

स्वयंवर की घोषणा कर दी गई। विदर्भ देश को खूब अच्छे ढंग से सजाया गया। हर गली-मोहल्ला उत्साह और उमंग से भरा था।

प्रासाद में आगंतुक राजाओं और देवताओं को ठहराने की व्यवस्था थी।

राजा नल को भी स्वयंवर का आमंत्रण मिला। वह प्रसन्नता में डूब गया। दमयंती के प्रति उसमें अपार अनुराग जाग गया था। वह विदर्भ जाने के लिए तैयार हो गया।

राजा नल अपने युग का श्रेष्ठतम सारथी था। उसके पास पवन-गति से भागने वाले घोड़े थे, जो देवताओं के घोड़ों को भी पराजित कर देते थे।

उसने अपने भाई पुष्कर को बुलाया।

दास ने लौटकर कहा, ''राजकुमार पुष्कर एक बाजी खेल रहे हैं। बाजी होने पर तुरंत आ जाएंगे। प्रतीक्षा करने को कहा है।''

नल को आघात-सा लगा कि इधर पुष्कर की रुचि जुए के प्रति-दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। उसे रोकना चाहिए।

थोड़ी देर में पुष्कर आ गया। उसने नल को प्रणाम किया। पूछा, ''क्या आज्ञा है, महाराज? देर के लिए क्षमा चाहता हूं।''

नल ने उसे बैठने के लिए कहा। जब वह बैठ गया तो राजा नल ने कहा, ''पुष्कर! वैसे तो किसी भी वस्तु में बुराई नहीं होती, पर अति हर बात की बुरी होती है। जुए के लिए राजा-महाराजाओं को एक निश्चित समय रखना चाहिए। इस दोपहर में जुए...''

पुष्कर ने बीच में कहा, ''महाराज! सबके अपने-अपने अलग-अलग शौक होते हैं। मुझे जुए में सर्वश्रेष्ठ बनना है...आप स्वयं देखेंगे कि एक दिन इस पृथ्वी पर मुझसे अच्छा कोई खिलाड़ी नहीं होगा।''

''ठीक है, पर राजकाज में यह अधिक नहीं होना चाहिए। राज्य के प्रबंध की अपनी अलग जिम्मेदारियां होती हैं।''

''राज आपका है। मैं तो केवल आपकी आज्ञा का पालन करता हूं। हुक्म कीजिए। मुझे अब क्या करना है?''

नल उसके व्यंग्य को समझ गया। फिर भी उसने धैर्य नहीं त्यागा। बोला, ''मैं विदर्भ देश जा रहा हूं। वहां की राजकुमारी दमयंती का स्वयंवर है। मुझे भी आमंत्रित किया गया है।''

एक पल रुककर वह पुनः बोला, ''और तुम तो जानते ही हो कि मैं दमयंती से हार्दिक अनुराग करता हूं।''

''जानता हूं, महाराज।'' पुष्कर ने उत्तर दिया, ''आप किसी बात की चिंता न करें। मैं निषध में न्याय-व्यवस्था बनाए रखूंगा। मैं सदा सुख-शांति के लिए प्रत्यनशील रहूंगा।''

''मुझे तुमसे यही आशा है।''

राजा नल अपने द्रुतगामी घोड़ों के रथ पर आरूढ़ होकर चल पड़ा।

घोड़े हवा से बातें कर रहे थे।

स्वर्गपुरी। इंद्र का प्रासाद। इंद्र स्वर्ण-रत्नजड़ित शय्या पर बैठे थे। उनके दोनों ओर दो अप्सराएं खड़ी थीं। शची उन्हें सोमरस पिला रही थी।

विश्व के सुख-दु:ख की चर्चा हो रही थी।

तभी विश्वयात्री मुनि नारद ने प्रवेश किया। वीणा के तार को झंकृत करके नारद ने कहा, ''नारायण! नारायण!''

महामुनि का सभी प्राणियों और देवताओं में समान आदर था। इंद्र और शची ने प्रणाम किया।

इंद्र उनके सम्मान में खड़े हो गए। शची ने अपने पति का अनुसरण किया।

''आज मुनिवर ने आने का कष्ट कैसे किया? कोई आज्ञा?''

नारदजी ने मुसकराकर कहा, ''नारायण, नारायण! मैं कोई आज्ञा दूं! देवेश! मैं तो सदा देवताओं की प्रतिष्ठा बचाने आता हूं।''

इंद्र गंभीर हो गए। पूछ बैठे, ''हमारी प्रतिष्ठा को क्या खतरा है?''

नारद ने कहा, ''प्रतिष्ठा फूल के समान होती है। फूल को जरा भी प्रतिकूलता मिली कि वह कुम्हलाया। पृथ्वी पर एक महान् स्वयंवर हो रहा है—विदर्भ देश के राजा भीम की पुत्री दमयंती का स्वयंवर। देवाधिदेव! दमयंती देवता और मनुष्य योनि की सर्वश्रेष्ठ सुंदरी है।''

शची तपाक से बोली, ''क्या वह मुझसे भी सुंदर है?''

''सौ गुना।'' नारद बोले।

शची जल-भुन गई।

नारद को इसकी कोई चिंता नहीं।

इंद्र चौंक पड़े। उनके हृदय में उथल-पुथल हो गई। उन्हें नारद की बात का विश्वास नहीं हुआ।

नारद ठहरे अंतर्यामी। सब मनोभाव समझने वाले। झट से बोले, ''इंद्रदेव को शंका करना उचित है, क्योंकि जिस देवता के चरणों में त्रिलोक का वैभव हो उसे दमयंती का परिचय क्यों नहीं है? इसे ही प्रकृति कहते हैं। इंद्रदेव! सब मनुष्यों और देवताओं से बड़ी प्रकृति है। वह हम सबको अपनी उंगलियों पर नचाती है।''

एक पल सन्नाटा छाया रहा।

नारदजी ने वीणा पर झंकार करके कहा, ''मैं सत्य बोल रहा

हूं—दमयंती परम रूपवती, गुणवती और शीलवती है उस जैसी नारी त्रिलोक में एक ही है—वह स्वयं।''

''फिर तो हम भी उसके स्वयंवर में जाएंगे?'' इंद्र ने झट अपना निर्णय सुना दिया।

''नारायण, नारायण! आपका वहां जाना ठीक नहीं है, देवेंद्र!'' नारदजी ने परामर्श देते हुए कहा, ''वहां आपका अपमान हो जाएगा।''

''मेरा अपमान?'' इंद्र गरज पड़े। वह तनकर खड़े हो गए, ''इस चराचर में ऐसा कौन है जो इंद्र का अपमान कर दे?''

नारद बोले, ''स्वयं दमयंती...वह आपका अपमान निश्चित रूप से करेगी।''

''क्यों?''

''क्योंकि वह निषध के राजा नल से प्रेम करती है।''

''मैं प्रेम का भूत एक पल में उतार दूंगा। समझे आप?''

''प्रेम का भूत देवता-दैत्य और मनुष्य किसी से नहीं उतरता है, देवेश! वह भूत प्रबल होता है। वह अपना नाश करा लेता है पर...''

''पर क्या? जब दमयंती सात भुवनों के स्वामी इंद्र को देखेगी तब वह प्रेम-वेम सब भूलकर वरमाला मुझे पहना देगी।''

''यह भी करके देख लीजिए।'' नारद ने कहा, ''किंतु दमयंती ने मन-ही-मन नल को वरने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली है!''

''देख लूंगा।''

नारद ने इंद्र को चलते-चलते फिर समझाया, ''आप स्वयंवर में मत जाइए। यदि जाएंगे तो आप अपना गौरव ही खोएंगे।''

इंद्र ने नारद की चुनौती को स्वीकार कर लिया।

जब इंद्र स्वयंवर में चलने लगे तब उन्हें यम, वायु, वरुण और अग्नि देवता भी मिल गए।

इंद्र ने उन्हें नारद का कथन सुनाया। इस पर चारों देवता भी आवेश में भर उठे।

यम ने सिर ऊंचा करके कहा, ''मैं मृत्यु का दूत हूं। सारी पृथ्वी पर हाहाकार मचा सकता हूं। भला दमयंती मुझे छोड़कर किसी तुच्छ मनुष्य को वर सकती है!''

अग्नि ने कहा, "मैं सबको अग्नि देता हूं, जिससे मनुष्य पोषण पाता है। क्या मुझे छोड़कर दमयंती किसी पृथ्वी के राजा को वरेगी?"

इसी तरह सबने अपनी-अपनी प्रशंसा की और बताया कि दमयंती उन जैसे पराक्रमी देवताओं को छोड़कर नल जैसे साधारण मनुष्य को नहीं वरेगी।

इंद्र ने नारद की बात याद दिलाई। इस पर देवता खिलखिलाकर हँस पड़े।

वरुण ने कहा, "हम तो मनुष्यों के लिए सभी क्षेत्रों में महान् हैं। रूप, गुण, विद्या और वीरता में श्रेष्ठ हैं। फिर भला दमयंती नल को कैसे अपना पति बना सकती है?"

इस प्रकार पांचों लोकपाल स्वयंवर में भाग लेने के लिए चल पड़े।

वे पांचों एक सुंदर विमान पर सवार थे जो आकाश में उड़ रहा था।

एक वन में उन पांचों ने नल को रथ पर जाते हुए देखा। हालांकि वे देवता थे, लेकिन नारद की बात से वे मन-ही-मन भयभीत हो गए थे। उनके मन में शंका जम गई थी कि कहीं दमयंती सचमुच उनका अपमान न कर दे। यदि देवताओं का अपमान हो गया तो मनुष्यों की शक्ति बढ़ जाएगी!

इंद्र ने शंका प्रकट की, "देवगण! महामुनि नारद भूत, भविष्य और वर्तमान के ज्ञाता हैं। उनकी बात सर्वथा निराधार नहीं होती।"

"फिर हमारा अपमान होना क्या संभव है?"

"हो सकता है।"

"तो फिर हमें कोई उपाय करना चाहिए जिससे दमयंती राजा नल को अपना पति न बना सके।"

इंद्र ने समझाया, "मनुष्य जाति बड़ी सरल और भोली होती है। वह छोटी-छोटी बात पर प्रतिज्ञा करती है और वचन दे बैठती है। हमें राजा नल से वचन ले लेना चाहिए।"

पांचों लोकपालों ने सोच-समझकर वन में विमान को उतारा।

नल को निकट से देखते ही पांचों चौंक पड़े। इतना तेजस्वी मानव? यह तो हम देवताओं से भी महान् लग रहा है!

"इसे देखकर दमयंती अवश्य मोहित हो जाएगी।" यम ने कहा।

इंद्र ने बताया, "देवर्षि नारद कह रहे थे कि दमयंती ने नल को पति बनाने का निश्चय कर लिया है। ऐसी स्थिति में हमें सचेत रहना चाहिए और नल को युक्तिपूर्वक अपने फंदे में फांस लेना चाहिए।"

देवताओं ने ऐसा ही किया। उन्होंने नल का रास्ता रोक लिया। पांचों ने अपना-अपना परिचय दिया।

नल पांचों देवताओं को अपने समक्ष पाकर गद्गद हो गया। बोला, "मैं कितना भाग्यशाली हूं कि आज मुझे आप जैसे देवताओं के साक्षात् दर्शन हो गए।"

इंद्र ने कहा, "तुम्हें हमारा एक काम करना है। क्या तुम करोगे?"

"अवश्य ही, देवेंद्र।"

"पहले वचन दो।"

नल ने तुरंत ही देवताओं को वचन दे दिया।

यम ने कहा, "जैसा हम कहेंगे, वैसा ही तुम करोगे?"

"अवश्य करूंगा।"

इंद्र जानते थे कि मनुष्य अपने वचन का पक्का होता है, इसलिए उन्होंने राजा नल को वचनों में बांध लिया।

राजा नल ने विनीत स्वर में पूछा, "अब बताइए, पंचदेव कि मुझे क्या आज्ञा है?"

"राजन्!" इंद्र ने कहा, "तुम कहां जा रहे हो, हमें इसका पता नहीं है। सबसे पहले तुम हमारा काम करो। हम देवता हैं। तुम दमयंती से जाकर कहो कि वह हममें से ही किसी एक को अपना पति बनाए।"

नल के हृदय पर वज्रपात-सा हो गया। वह पांचों देवताओं को आंखें फाड़-फाड़कर देखने लगा। बड़ी कठिनता से वह बोला, "देवगण, मैं भी दमयंती के स्वयंवर में ही जा रहा हूं। फिर मुझे यह कहने के लिए भेजना कहां तक उचित है!"

"उचित-अनुचित तो तुम्हें प्रतिज्ञा करने से पहले सोचना चाहिए था!" यम ने क्रोधित स्वर में कहा, "अपने वचनों की रक्षा करो, राजा नल!"

"आप जानते हैं कि..."

"हम इतना ही जानते हैं कि तुम हमसे वचनबद्ध हो।" अग्नि ने कहा।

राजा नल ने सिर झुका लिया। कहा, "तो यही हो। मैं अपने वचन का पालन अवश्य करूंगा!"

देवता प्रसन्न हो गए।

राजा नल के विदा हो जाने पर इंद्र ने अपने साथी देवताओं से कहा, "क्यों देवगण, कैसा चक्कर चलाया? अब दमयंती इसे तो कभी अपना वर नहीं बनाएगी।"

देवता खिलखिलाकर हँस पड़े, "मूर्ख प्राणी!"

राजा नल उदास-उदास-सा विदर्भ पहुंचा। विदर्भ की गली-गली, चौक-चौक एवं सारे राजपथ सजे हुए थे।

राजा नल के आने का समाचार सुनकर विदर्भ में हलचल मच गई। तुरंत एक दास ने जाकर केशिनी को समाचार दिया कि राजा नल पधार गए हैं।

केशिनी की बाछें खिल गईं।

वह हवा की गति से भागकर दमयंती के पास पहुंची। दमंयती को बांहों में भरकर उसने कहा, "मुझे हीरों का हार पहनाइए, मैं शुभ संवाद लाई हूं।"

दमयंती के नयन चमक उठे। अधरों पर हास तैर आया।

"हार देने को कहिए न!" केशिनी ने आग्रह-भरे स्वर में कहा, "वरना मैं नहीं बताऊंगी।"

दमयंती ने उसको बताया, "मैं जानती हूं कि तुम क्या कहना चाहती हो! यही तो कि राजा नल आ गए हैं! उनके रथ में जुते हुए घोड़ों की टापों से सारा नगर गूंज जाता है।"

केशिनी उदास हो गई।

दमयंती ने उसे गले का हार देकर कहा, "केशिनी, पुरस्कार तो तुम्हें मिलेगा ही। बस, अब कृपा करके मुझे..."

"समझी, पर जरा कठिन काम है।"

"करो।"

केशिनी राजा नल के पास गुप्त रूप से गई।

राजा नल पहले से ही तैयार बैठे थे। उसने व्यग्रता से कहा, ''मैं स्वयं दमयंती से मिलने को इच्छुक हूं। मुझे मेरा कर्तव्य पूरा करना है।''

केशिनी उसे गुप्त मार्ग से दमयंती के महल में ले गई।

दमयंती राजा नल को देखकर रुआंसी हो गई! उससे कुछ पल तक बोला नहीं गया।

अंत में राजा ने ही मौन भंग किया, ''देवी! मैं इस समय आपके सामने राजा नल बनकर नहीं आया हूं, बल्कि एक संदेश-वाहक बनकर आया हूं। आज्ञा हो तो कहूं।''

दमयंती की आकृति मलीन हो गई। वह धीरे से बोली, ''कहिए।''

''आपके स्वयंवर में पांच देवता— इंद्र, अग्नि, वरुण, यम और वायु भी आ रहे हैं। उनका आग्रह-भरा संदेश है कि आप उनमें से ही किसी एक को अपना पति बनाइए।''

दमयंती यह सुनकर चौंक पड़ी।

राजा नल ने आदि से अंत तक सारी बात बताकर कहा, ''देवी! मैं वचन से विवश हूं।''

''आपने अपना वचन पूरा किया और अब मैं अपने मन की प्रतिज्ञा पूरी करूंगी। राजन्! मैं मन से आपको पहले ही अपना पति मान चुकी हूं और अब मैं स्वयंवर में उसे पक्का कर लूंगी। मुझे देवताओं का वैभव नहीं चाहिए। मुझे चाहिए राजा नल का प्रेम!''

वहां से आकर राजा नल ने देवगणों को बताया, ''मैंने अपने वचन का पालन कर दिया है।''

''दमयंती ने क्या कहा?''

राजा नल को झूठ बोलना जरा भी पसंद नहीं था। उसने देवगणों से कहा, ''देवी दमयंती ने कहा है कि मैं अपने मन की प्रतिज्ञा अवश्य पूरी करूंगी। मुझे लगता है कि वह मुझे ही वरमाला पहनाएंगी।''

देवतागण अपमान की आग में जल उठे। उन्होंने निश्चय किया कि दमयंती को अपनी पत्नी बनाकर ही रहेंगे।

तुरंत इंद्र ने अपने साथियों को भेष बदलने के लिए कहा। विज्ञान, शक्ति और कौशल में मनुष्य से महान् पांचों देवताओं ने स्वयं राजा नल

का भेष बना लिया। सबने एक-दूसरे को देखा। इंद्र ने कहा, ''अब देखना है कि दमयंती किसे अपना पति बनाएगी! किसे वरमाला पहनाएगी!''

स्वयंवर का मंडप सुंदर ढंग से सुसज्जित किया गया था। द्वार पर दो हाथी आने वाले मेहमानों को मालाएं पहना-पहनाकर स्वागत कर रहे थे।

वंदनवार और सुगंधित फूल चारों ओर बिखरे पड़े थे।

दूर-दूर के राजा और देवता आए थे।

राजा नल ने मंडप में प्रवेश किया। वह एक सिंहासन पर बैठ गया। उसी पल पांचों देवता भी, स्वयं नल का भेष धारण किए हुए, राजा नल के पास ही आकर बैठ गए।

नगाड़ा बजा।

दमयंती ने स्वयंवर-मंडप में प्रवेश किया। सारी सभा की आंखें दमयंती के अनुपम सौंदर्य पर अटक-सी गईं।

दमयंती ने एक पल चारों ओर देखा, फिर वह राजा नल का वरण करने के लिए आगे बढ़ने लगी। उसके हाथ में वरमाला थी।

वह जैसे ही राजा नल के पास पहुंची—विस्मय में डूबकर पत्थर की-सी हो गई। उसने मन-ही-मन सोचा—'यह क्या है? एक की जगह छः नल...बिलकुल एक जैसे!'

वह समझ गई कि इसमें क्या रहस्य है। उसने एक पल छहों नलों को देखा फिर कहा, ''भेष बदलकर किसी कुंवारी कन्या को वरना महाकपट होता है। मैं देवताओं से प्रार्थना करती हूं कि वे अपने-अपने असली रूप में आ जाएं।''

किंतु देवताओं पर उसकी बात की कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई।

उसने विनम्र स्वर में कहा, ''मैं इस शुभ अवसर पर किसी का अहित करना नहीं चाहती हूं, पर मैं देवता और समस्त उपस्थित महानुभावों के सामने घोषणा करती हूं कि मैंने राजा नल को हंस से संदेश पाने के बाद ही पति मान लिया था। मेरे मन में राजा नल के अलावा किसी का भी ध्यान आया हो तो प्रकृति मुझे असीम दंड दे।'' उसने बार-बार करुण विलाप किया पर देवताओं के हृदय नहीं बदले।

तब दमयंती अपने प्रेम की संपूर्ण शक्ति को लेकर बोली, ''हे

मानवों से श्रेष्ठ और शक्तिमान देवता, आप यह न समझें कि आप सदा मानवों को छलते रहेंगे। मैं आप लोगों को सत्य की तरह विवस्त्र कर दूंगी। हे प्रकृति! तू सबसे शक्तिमान और दयालु है। तू एक ऐसी शक्ति है जो देवताओं का गर्व चूर्ण करती है।'' फिर वह सारे मंडप को संबोधित करके बोली, ''ये देवता जो अपने को सभ्य, सुसंस्कृत और महान् कहते हैं, कितने ओछे और पशुवत हैं कि वे एक अबला को उसकी इच्छा के बिना अपनी बनाना चाहते हैं। मैं कहती हूं—इनका आचरण दैत्यों के समान है। मैं इनके वैभव पर लात मारती हूं तथा अपनी आत्मा के सत्य के बल पर इन्हें असली रूप में लाती हूं।''

दमयंती के तेज से देवता कांप गए। कुछ ही पलों में वे अपने असली रूप में आ गए और दमयंती से क्षमा मांगने लगे।

इंद्र ने कहा, ''हम पराजित हो गए हैं!''

सती दमयंती ने शांत होकर राजा नल को अपना पति बना लिया। वह लज्जा से लाल हो उठी। नल ने भी अत्यंत ही प्रेम से दमयंती को देखा।

देवता प्रसन्न हो गए।

इंद्र ने राजा नल को वरदान दिया, ''मैं तुम्हें यज्ञ में प्रत्यक्ष दर्शन दूंगा।''

अग्नि ने कहा, ''जहां तुम चाहोगे, मैं वहां उपस्थित हो जाऊंगा।''

यम ने कहा, ''तुम पृथ्वी पर सबसे स्वादिष्ट खाना पका सकोगे।''

वरुण ने आशीष दिया, ''तुम जहां भी चाहोगे, जल आ जाएगा।''

वायु ने कहा, ''मैं विपत्ति में सदा तुम्हारी रक्षा करूंगा।''

सारे देवता अपने-अपने विमानों में बैठकर चले गए।

राजा भीम बहुत ही प्रसन्न था। उसने राजा नल और दमयंती को आशीर्वाद दिया और महल में ले जाकर विधिवत् विवाह संपन्न कर दिया। अपनी पुत्री को राजा भीम ने हजारों गायें, सोना-चांदी और हीरे-मोती दिए।

राजा नल अपने देश निषध को लौट आया। दमयंती अपने साथ अपनी तीनों प्रिय सखियों को भी लाना नहीं भूली।

देवताओं के विमान आकाश-मार्ग से जा रहे थे। जिधर से ये विमान जाते

थे, उधर एक अद्भुत छटा बिखर जाती थी। देखते ही लगता था, मनुष्यों से अलग कोई जा रहा है।

रास्ते में कलि और द्वापर मिले। ये भी देवता थे। उन्होंने पांचों महान् देवताओं को देखा तो उत्कंठित हो गए।

प्रार्थना करने पर इंद्र, यम, अग्नि, वरुण और वायु अपने-अपने विमानों से उतरे।

कलि ने नतमस्तक होकर पूछा, ''बात क्या है देवाधिदेव? किधर से आना हो रहा है?''

इंद्र ने कहा, ''कलि! हम दमयंती के स्वयंवर से आ रहे हैं?''

द्वापर ने झट कहा, ''आप बड़े उदास लग रहे हैं? क्या कोई विशेष बात हुई है?''

यम ने दुःखी मन से कहा, ''हां द्वापर, हम पांचों लोकपालों का ऐसा अपमान पहल कभी नहीं हुआ था!''

कलि ने पूछा, ''लेकिन हुआ क्या? आप खिन्न क्यों हैं?''

इसी पल महामुनि नारद आ गए। वीणा को झंकृत करके वे बोले, ''नारायण, नारायण, नारायण...''

''नमस्कार, देवर्षि!'' कलि ने प्रणाम किया।

''आयुष्मान भव।'' नारद ने कहा, ''आप देवताओं के घावों को क्यों हरा कर रहे हैं! आगे ही ये बड़े दुःखी हैं।''

''देवताओं को दुःखी करने वाला इस पृथ्वी पर उत्पन्न नहीं हुआ।'' कलि गरज उठा।

''घमंड किसी का भी नहीं रहता है, कलि! घमंडी का सिर सदा नीचा होता है। जो जीव विनम्र होते हैं, वे अपना नाश कभी नहीं कराते। मैंने तो इन्हें पहले ही कह दिया था कि आप स्वयंवर में न जाएं। राजकुमारी दमयंती सिवाय राजा नल के किसी को अपना पति नहीं बनाएगी। पर ये नहीं माने।''

''तो दमयंती...''

नारद मुसकराए। बोले, ''दमयंती ने जो सोचा वही किया, पर आपके इन महान् देवताओं ने अत्यंत ही भ्रष्ट तरीके अपनाए। इन्होंने तो दमयंती को पाने के लिए राजा नल का रूप भी धारण कर लिया। दमयंती

इससे भी नहीं घबराई। उसने इनके मुखौटे उतार दिए। ऐसा अपमान? मनुष्यों के बीच देवताओं की वह कितनी दयनीय स्थिति थी! ये सब अपराधियों की भांति खड़े थे और राजा नल तथा सारे मनुष्य मन-ही-मन मुसकरा रहे थे।''

कलि ने गुस्से में कहा, ''एक राजा इतना ढीठ? देवताओं से टक्कर! मैं उसे देख लूंगा। देवताओं के अपमान का बदला मैं लूंगा!''

नारद उसे रोकते हुए बोले, ''शांत, शांत, कलि श्रीमान, शांत! इतना आवेश में मत आइए! जिस जीवन की रक्षा कोई नहीं करता है उसकी रक्षा एक सबसे बड़ी शक्ति करती है। आप व्यर्थ ही क्यों कष्ट कर रहे हैं? जिस तरह ये अपमानित हुए हैं, उसी तरह आपको भी अपना-सा मुंह लेकर आना पड़ेगा, समझे!''

''मैं आपको बता दूंगा। राजा नल को रास्ते का भिखारी नहीं बनाया तो मेरा नाम कलि नहीं।'' उसने द्वापर से पूछा, ''क्यों द्वापर, तुम सहयोग करोगे?''

''अवश्य मित्र! मैं आपको सहयोग अवश्य दूंगा। हमें देवताओं के अपमान का बदला लेना ही चाहिए।''

नारद ने उन्हें फिर समझाया पर कलि और द्वापर नहीं माने।

वे दोनों राजा नल से बदला लेने के लिए कटिबद्ध हो गए।

तब इंद्र ने कहा, ''भाई कलि, गलती हमारी थी, इसका हमें दंड मिल गया। पर तुम व्यर्थ में क्यों उलझ रहे हो? भूल जाओ सब बातों को।''

''नहीं, हम बदला लेंगे।''

नारदजी मुसकराए। कलि और द्वापर निषध की ओर चल पड़े।

नारद ने इंद्र की ओर देखा।

इंद्र ने कहा, ''उस धर्मपरायण स्त्री के सम्मुख इन्हें भी पराजित होना पड़ेगा। उसकी आत्मा में सत्य और विश्वास की महान् शक्ति है। वह अपने आचरण से देवी हो गई है। अपराजित बन गई है।''

कलि और द्वापर दोनों ने निषध में प्रवेश किया। कलि को लगा कि वे किसी देवताओं की नगरी में आ गए हैं। इतना सुख, संतोष और समृद्धि

कहां देखने को मिलती है? सब वर्णों के लोग, अपने-अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हैं। शेर और बकरी एक घाट पर पानी पीते हैं। न्याय इतना सस्ता है कि किसी को दुःखी नहीं होना पड़ता। प्रभात शंखों की पवित्र ध्वनियों से आरंभ होता है और सांझ मंदिर की आरतियों से।

राजा नल और दमयंती का जीवन अत्यंत आनंदमय था। राजा नल तो क्या, स्वयं दमयंती राजकाज की बातों में हिस्सा लेती थी। दोनों जीवन का सुख ले रहे थे।

कलि और द्वापर ने एक अथिति-गृह में शरण ली। वहां सारी वस्तुएं राज्य की ओर से मिलती थीं।

लेकिन पुष्कर राजा नल से असंतुष्ट था। पुष्कर का स्वभाव जरा उद्दंड था। वह अपने यौवन के बल पर कभी-कभी न्याय का गला घोंट देता था। इस पर नल ने उसे राजपद से हटा दिया था।

इसकी सूचना कलि और द्वापर को मिल गई। कलि ने द्वापर को पुष्कर के पास भेजा। पुष्कर ने द्वापर से भेंट की।

द्वापर ने झट कहा, ''आर्य पुष्कर, मैं पांसा खेलने में अत्यंत चतुर और श्रेष्ठ हूं। क्या आप मुझसे पांसा खेलेंगे?''

''मैं आज तक किसी से पांसा खेलने में हारा नहीं हूं।'' पुष्कर ने गर्व से कहा।

''फिर हो जाए बाजी।''

दोनों खेलने लगे। द्वापर ने चौपड़ के खेल में पुष्कर को हरा दिया। पुष्कर उदास हो गया।

द्वापर ने कहा, ''उदास क्यों हो रहे हैं, आर्य? मैं आपको जुए में इतना सिद्धहस्त बना दूंगा कि भविष्य में कोई भी आपको नहीं हरा सकेगा।''

दोनों मित्र बन गए।

इधर कलि राजा नल को प्रभावित करने का प्रयत्न कर रहा था।

एक दिन उसे अवसर मिल गया। उस दिन राजा नल को क्या सूझा कि वह सुरा का पान करके महल से निकल पड़ा।

वह अपने रथ पर था। उसके घोड़े हवा से भी तेज भागने वाले थे और वह सर्वोत्तम सारथी भी था।

अचानक सामने एक चट्टान आ गई। उस चट्टान से रथ जा भिड़ता कि इसके पहले ही कलि ने घोड़ों को रोक लिया। वह घोड़ों की लगाम पकड़कर लटक गया।

राजा नल के प्राण बच गए।

राजा नल उसे अपने प्रासाद में ले आया। कहावत है काले के पास गोरा बैठे, रंग भले ही न बदले पर बुद्धि अवश्य बदल जाती है। वही स्थिति राजा नल और पुष्कर की हो गई थी। समय बीतता गया।

पुष्कर अपने संसार में लीन रहता था।

और राजा नल इधर दमयंती से दूर-दूर होता जा रहा था। जिस दमयंती से वह एक पल भी अलग नहीं रहता था, उससे अब वह दो-दो दिन नहीं मिलता था। दिन-रात क्रीड़ाओं में मग्न रहता था और सुरापान करता था।

एक रात दमयंती ने राजा नल को बुलाया। केशिनी स्वयं गई थी। उसने जाकर देखा कि महाराज केलि-भवन में नृत्य देख रहे हैं।

कलि उसके पास बैठा-बैठा उनका मनोरंजन कर रहा है।

केशिनी ने नृत्य के बीच बाधा डालकर कहा, ''महाराज, महारानी ने आपको अभी बुलाया है।''

''क्यों?'' राजा नल की आंखें लाल हो गईं।

केशिनी कांप उठी। सहमती हुई वह बोली ''राजकुमार इंद्रसेन और राजकुमारी इंद्रसेना का स्वास्थ्य अचानक खराब हो गया है। महारानी घबरा उठी हैं।''

कलि मुंह बिगाड़कर बोला, ''बस, इस साधारण बात के लिए तुमने महाराज के अपार आनंद में बाधा डाल दी! क्या निषध के सारे राजवैद्य मर गए हैं?''

राजा नल ने भी कठोर स्वर में कहा, ''इस बार तो क्षमा कर देता हूं। इन साधारण बातों के लिए फिर कभी हमारे आनंद में विघ्न डाला तो हम तुम्हें जीवित ही जला डालेंगें।''

केशिनी हाथों में मुंह छुपाकर लौट आई। वह दमयंती की गोद में पड़कर फफक-फफक रोने लगी।

दमयंती ने स्नेह से हाथ फेरकर कहा, ''क्या बात है, केशिनी! तुम

कहां देखने को मिलती है? सब वर्णों के लोग, अपने-अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हैं। शेर और बकरी एक घाट पर पानी पीते हैं। न्याय इतना सस्ता है कि किसी को दु:खी नहीं होना पड़ता। प्रभात शंखों की पवित्र ध्वनियों से आरंभ होता है और सांझ मंदिर की आरतियों से।

राजा नल और दमयंती का जीवन अत्यंत आनंदमय था। राजा नल तो क्या, स्वयं दमयंती राजकाज की बातों में हिस्सा लेती थी। दोनों जीवन का सुख ले रहे थे।

कलि और द्वापर ने एक अथिति-गृह में शरण ली। वहां सारी वस्तुएं राज्य की ओर से मिलती थीं।

लेकिन पुष्कर राजा नल से असंतुष्ट था। पुष्कर का स्वभाव जरा उद्दंड था। वह अपने यौवन के बल पर कभी-कभी न्याय का गला घोंट देता था। इस पर नल ने उसे राजपद से हटा दिया था।

इसकी सूचना कलि और द्वापर को मिल गई। कलि ने द्वापर को पुष्कर के पास भेजा। पुष्कर ने द्वापर से भेंट की।

द्वापर ने झट कहा, ''आर्य पुष्कर, मैं पांसा खेलने में अत्यंत चतुर और श्रेष्ठ हूं। क्या आप मुझसे पांसा खेलेंगे?''

''मैं आज तक किसी से पांसा खेलने में हारा नहीं हूं।'' पुष्कर ने गर्व से कहा।

''फिर हो जाए बाजी।''

दोनों खेलने लगे। द्वापर ने चौपड़ के खेल में पुष्कर को हरा दिया। पुष्कर उदास हो गया।

द्वापर ने कहा, ''उदास क्यों हो रहे हैं, आर्य? मैं आपको जुए में इतना सिद्धहस्त बना दूंगा कि भविष्य में कोई भी आपको नहीं हरा सकेगा।''

दोनों मित्र बन गए।

इधर कलि राजा नल को प्रभावित करने का प्रयत्न कर रहा था।

एक दिन उसे अवसर मिल गया। उस दिन राजा नल को क्या सूझा कि वह सुरा का पान करके महल से निकल पड़ा।

वह अपने रथ पर था। उसके घोड़े हवा से भी तेज भागने वाले थे और वह सर्वोत्तम सारथी भी था।

अचानक सामने एक चट्टान आ गई। उस चट्टान से रथ जा भिड़ता कि इसके पहले ही कलि ने घोड़ों को रोक लिया। वह घोड़ों की लगाम पकड़कर लटक गया।

राजा नल के प्राण बच गए।

राजा नल उसे अपने प्रासाद में ले आया। कहावत है काले के पास गोरा बैठे, रंग भले ही न बदले पर बुद्धि अवश्य बदल जाती है। वही स्थिति राजा नल और पुष्कर की हो गई थी। समय बीतता गया।

पुष्कर अपने संसार में लीन रहता था।

और राजा नल इधर दमयंती से दूर-दूर होता जा रहा था। जिस दमयंती से वह एक पल भी अलग नहीं रहता था, उससे अब वह दो-दो दिन नहीं मिलता था। दिन-रात क्रीड़ाओं में मग्न रहता था और सुरापान करता था।

एक रात दमयंती ने राजा नल को बुलाया। केशिनी स्वयं गई थी। उसने जाकर देखा कि महाराज केलि-भवन में नृत्य देख रहे हैं।

कलि उसके पास बैठा-बैठा उनका मनोरंजन कर रहा है।

केशिनी ने नृत्य के बीच बाधा डालकर कहा, ''महाराज, महारानी ने आपको अभी बुलाया है।''

''क्यों?'' राजा नल की आंखें लाल हो गईं।

केशिनी कांप उठी। सहमती हुई वह बोली ''राजकुमार इंद्रसेन और राजकुमारी इंद्रसेना का स्वास्थ्य अचानक खराब हो गया है। महारानी घबरा उठी हैं।''

कलि मुंह बिगाड़कर बोला, ''बस, इस साधारण बात के लिए तुमने महाराज के अपार आनंद में बाधा डाल दी! क्या निषध के सारे राजवैद्य मर गए हैं?''

राजा नल ने भी कठोर स्वर में कहा, ''इस बार तो क्षमा कर देता हूं। इन साधारण बातों के लिए फिर कभी हमारे आनंद में विघ्न डाला तो हम तुम्हें जीवित ही जला डालेंगें।''

केशिनी हाथों में मुंह छुपाकर लौट आई। वह दमयंती की गोद में पड़कर फफक-फफक रोने लगी।

दमयंती ने स्नेह से हाथ फेरकर कहा, ''क्या बात है, केशिनी! तुम

इस तरह क्यों रो रही हो? बोलो न!''

केशिनी ने सारी व्यथा-कथा सुनाई।

दमयंती का हृदय क्रोध से भर गया। वह उसी पल राजा नल के पास गई। कड़ककर बोली, ''रोक दीजिए यह नृत्य-संगीत!''

कक्ष में सन्नाटा छा गया। राजा नल का नशा उतर गया।

कलि दुष्टता से मुसकराने लगा।

दमयंती ने रुंधे स्वर में कहा, ''कोई राजा रात-दिन चौपड़ नहीं खेलता है, नृत्य नहीं देखता है। जो ऐसा करता है वह विपत्ति से टकराता है। महाराज, केशिनी का ऐसा अपमान आपने कैसे किया?''

दुष्ट कलि धीमे स्वर में बोला, ''क्योंकि यह आपके पति हैं। पति को अपनी इच्छा के अनुसार सब कुछ करने का अधिकार है।''

राजा नल ने कलि की बात को दोहराया, ''दमयंती! अपनी सीमा से बाहर मत जाओ। मैं राजा नल हूं—सैकड़ों गुणों का स्वामी!''

दमयंती को लगा कि किसी ने उसकी पीठ पर अनेक कोड़े मार दिए हैं।

राजा नल ने फिर कहा, ''तुम यहां से जा सकती हो। भविष्य में बिना पूछे इधर मत आना, समझीं!''

अपमान से जलकर दमयंती लौट आई। केशिनी की भांति वह भी रोने लगी।

जब रोकर हृदय हलका कर लिया तब दमयंती ने कहा, ''कोई जोर का झंझावात आने वाला है। मुझे लगता है, केशिनी! मेरे भाग्य का तारा डूब गया है।''

केशिनी ने भी शंका प्रकट की, ''रानीजी, मुझे भी कुछ ऐसा ही लगता है कि निकट भविष्य में कुछ अशुभ घटेगा।''

दोनों रात-भर सोचती रहीं।

अंत में दमयंती ने निर्णय लिया, ''केशिनी, मैं अपने दोनों बच्चों को ननिहाल भेजना चाहती हूं। यहां उन्हें कभी भी संकट का सामना करना पड़ सकता है।''

''फिर?'' केशिनी ने पूछा। उसकी आंखों में भय नाच उठा।

''तुम बृहत्सेना को बुलाकर लाओ।''

बृहत्सेना दासी थी। वह तुरंत आई। उसने जैसे ही प्रणाम किया, दमयंती ने कहा, ''बृहत्सेना! जल्दी से वार्ष्णेय नामक सूत को बुला लाओ।''

उसके जाते ही केशिनी ने पूछा, ''उसे क्यों बुलाया है?''

''मैं अपने दोनों बच्चों को विदर्भ भेजना चाहती हूं। यहां उनकी सुरक्षा के लिए भय है।''

बृहत्सेना सूत वार्ष्णेय को बुला लाई। दमयंती ने वार्ष्णेय को अपने पुत्र इंद्रसेन तथा पुत्री इंद्रसेना को तत्काल विदर्भ ले जाने के लिए कहा।

सारथी वार्ष्णेय ने दमयंती की आज्ञा का पालन किया।

कलि चेष्टा करने लगा कि अब कोई ऐसा दावं चलाए कि राजा नल पुष्कर से जुआ खेलने के लिए तैयार हो जाए।

आखिर उसे अवसर मिल ही गया।

एक दिन की बात है—

कलि और राजा नल आपस में पांसा खेल रहे थे। नल कलि को बार-बार पराजित कर रहा था इस कारण नल को घमंड का नशा चढ़ गया था।

वह बोला, ''मित्र कलि, मुझे लगता है, मैं इस पृथ्वी का सबसे अच्छा द्यूतक (जुआरी) हो गया हूं।''

''निस्संदेह, महाराज।'' कलि ने कहा, ''लेकिन एक बात है, महाराज?''

''क्या?''

''आप पृथ्वी के सबसे श्रेष्ठ सारथी हैं और आपके भाई के पास पृथ्वी का श्रेष्ठ सफेद बैल है। उसका नाम 'दांत' है। मैं समझता हूं कि यदि वह बैल आपको मिल जाए तो आप देवताओं की गरिमा को भी मिटा सकते हैं।''

''मिल जाए?'' चौंक पड़ा राजा नल। बोला, ''भाई कलि, वह मुझे मिला हुआ ही समझो। पुष्कर मेरा छोटा भाई है। वह मुझे कभी किसी वस्तु के लिए मना नहीं करेगा।''

कलि हँस पड़ा।

"अरे, तुम हँसे क्यों? क्या तुम्हें मेरी बात पर विश्वास नहीं होता?"

"नहीं, महाराज।" कलि ने स्पष्ट शब्दों में कहा, "वह समय चला गया जब पुष्कर आपकी आज्ञा को ईश्वर की आज्ञा समझता था। अब तो..."

नल ने तुरंत किसी दास को पुकारा। कहा, "जाओ, राजकुमार पुष्कर को अभी बुलाकर लाओ।"

दास तुरंत गया।

कुछ ही पलों में वह लौटकर आ गया। उसके साथ पुष्कर था; द्वापर भी था।

पुष्कर ने प्रणाम करके कहा, "क्या महाराज चौपड़ खेल रहे हैं? मुझे लगता है कि महाराज अब पांसा फेंकने में सर्वश्रेष्ठ हो गए हैं।"

कलि ने दुष्टता की, "मैं तो चाहूंगा कि एक बार महाराज सारे विश्व को चुनौती देकर अपना नाम उज्ज्वल कर दें।"

द्वापर झट-से बोला, "पर हमारे राजकुमार पुष्कर भी किसी से कम नहीं हैं। मैं समझता हूं कि महाराज नल को भी राजकुमार पुष्कर पराजित कर देंगे।"

"यह असंभव है।" कलि ने कहा।

"आपको भ्रम है।" द्वापर ने उकसाया।

तभी पुष्कर ने कलि और द्वापर को शांत करके कहा, "महाराज, आपने मुझे अभी क्यों बुलाया है?"

"पुष्कर, मुझे तुम्हारा दांत नामक सफेद बैल चाहिए।"

द्वापर ने बीच में ही कहा, "आ गया न अवसर! कलिदेव, कर लीजिए परीक्षा कि कौन श्रेष्ठ द्यूतक है।"

"क्या मतलब?"

"पहला दावं दांत बैल का ही लगा दीजिए।" द्वापर ने गर्व से कहा, "मैं समझता हूं, पहले ही दावं में महाराज नल का गर्व राजपुत्र पुष्कर चूर कर देंगे।"

कलि ने उठकर कहा, "बहुत ही घमंड हो गया है तुम्हें! मैं जानता हूं कि इधर राजपुत्र पुष्कर अपने-आपको बहुत अधिक समझने लगे हैं।"

बात तूल पकड़ती गई।

थोड़ी ही देर में नल और पुष्कर के बीच जुआ होना निश्चित हो गया।

इसकी सूचना दमयंती को मिली। दमयंती तुरंत समझ गई कि उसके दिन बदल गए हैं। बुरे दिनों की काली छाया उसके भाग्य पर पड़ गई है।

वह लपककर केशिनी के पास आई। केशिनी को भेजकर उसने नल को बुलाया और प्रार्थना की, "आप इतना अनुचित कार्य क्यों कर रहे हैं, स्वामी?"

"अनुचित?" नल ने लापरवाही से कहा, "अरे पगली, यह तो हम दोनों भाइयों के बीच क्षणिक मनोरंजन हो रहा है।"

"नहीं महाराज, मुझे इधर रह-रहकर बुरे स्वप्न आते रहते हैं। आप ऐसा मत कीजिए। आप राजा हैं और राजा का स्वभाव बदलते जरा भी देर नहीं लगती।"

पर राजा नल ने दमयंती की बात नहीं मानी। वह अधिक विरोध करने लगी तो नल ने उसे डांट दिया, "स्त्री होकर अधिक ज्ञान की बातें न करो। मैं स्वयं अपना भला-बुरा समझता हूं।"

दमयंती अपनी सहेलियों—केशिनी, सुहासिनी और वन्या के पास आकर बोली, "मेरे भाग्य का सूर्य निस्तेज हो गया है! अब मेरी रक्षा तो भगवान ही करेगा।"

केशिनी ने दमयंती को समझाया, "नहीं महारानी, आप सती नारी हैं। आपको कोई भी दु:ख नहीं दे सकता।"

"सती नारी सदा पति के द्वारा ही दु:ख पाती है। जिस सती नारी का पति सती के वचनों को नहीं सुनता, वह स्वयं कुपथ पर जाता है और दूसरों को भी दु:ख देता है।"

सुहासिनी ने कहा, "नहीं महारानी, आप ऐसा क्यों सोचती हैं? महाराज स्वयं समझदार हैं। दो घड़ी जी बहला लेंगे।"

तीनों सखियां दमयंती को भांति-भांति से ढांढ़स बंधाती रहीं, किंतु दमयंती के मन पर काले बादल मंडराते रहे।

राजा नल जुए का बड़ा प्रेमी था। उसने इसके लिए अलग से एक द्यूत-क्रीड़ा कक्ष (जुआघर) बना रखा था। उस कक्ष में ही दोनों के खेलने का प्रबंध होने लगा।

द्वापर ने पहले से ही ऐसे पांसे बना रखे थे, जिससे नल कभी जीत ही नहीं सकता था। उन पांसों का प्रयोग पुष्कर ने खुलकर किया। पहली बाजी में ही राजा नल हार गया। इस पर कलि ने राजा को उकसाया।

दांव पर दांव रखे जाने लगे। हीरा, मोती, माणिक, पन्ना, खजाना, राज्य— और सब कुछ!

पुष्कर घमंड से खिलखिलाकर हँसा और बोला, ''महाराज, आप अब क्या दांव पर लगाएंगे? आपके पास है कुछ...''

राजा नल उदास होकर बोला, ''अब मेरे पास कुछ भी नहीं बचा है।''

द्वापर ने झट-से कहा, ''एक दांव और लगाइए, महाराज! इस बार आप हार गए तो आपको निषध छोड़ना पड़ेगा।''

कलि ने कहा, ''क्या पता! हो सकता है, इस बार हारा हुआ सब कुछ वापस ही मिल जाए!''

दांव लग गया।

भ्रष्टाचारियों ने राजा नल को फिर हरा दिया।

राजा नल का मुखमंडल पीला पड़ गया। वह रोगी-सा हतप्रभ होकर दमयंती के पास गया।

दमयंती उसे देखते ही समझ गई कि क्या परिणाम निकला है।

राजा नल अपराधी की भांति दमयंती के सामने खड़ा हो गया। उसकी दृष्टि झुकी हुई थी। वह कुछ बोलना चाहता था, पर दमयंती ने मनाकर दिया, ''नहीं महाराज, आप कुछ भी मत कहिए। मैं सब कुछ समझ गई हूं। आपकी आंखों की तरलता, उतरा हुआ पीला मुख, कांपते हुए अंग-अंग मुझसे कह रहे हैं कि आप सब कुछ हार गए हैं।''

नल की आंखों से आंसू बह निकले।

दमयंती ने फिर कहा, ''आप हताश मत होइए, महाराज! जीवन में सुख-दुःख आते ही रहते हैं। इनसे घबराना नहीं चाहिए।''

''दमयंती!'' राजा नल ने बड़ी कठिनता से कहा, ''मैं वास्तव में

सब कुछ हार गया हूं। यहां तक कि निषध में यहां रहना भी। हमें यह नगर तुरंत छोड़ना पड़ेगा।''

दमयंती ने विनम्र स्वर में कहा, ''महाराज, यदि आपको कोई अड़चन न हो तो हम विदर्भ चलें। हमें वहां किसी वस्तु का अभाव नहीं रहेगा।''

''नहीं, दमयंती, कोई बिना बुलाए अपने प्रिय-से-प्रिय जन के पास भी जाता है तो अपमानित होता है। मान-सम्मान बराबर वालों को ही दिया जाता है।''

''फिर?''

''मैं चाहता हूं कि तुम अकेली विदर्भ चली जाओ। तुम्हें तुम्हारे मां-बाप दुःख में गले से लगा लेंगे।''

''नहीं स्वामी, जो स्त्री अपने पति को संकट में छोड़कर सुख में रहती है, उसे सदैव नरक मिलता है। मैंने आपके साथ अपार सुख भोगा है, आपके साथ विकट संकट भी भोगूंगी।''

''नहीं रानी, तू सदा फूलों में पली है। पुष्पों की सेज पर सोई है।''

''आपने भी तो कम सुख नहीं भोगा है! भाग्य की ही तो बात है। जब वे दिन नहीं रहे तो भला ये दिन कैसे रहेंगे! अंधेरे के बाद उजाला आता ही है!''

दोनों अपने-अपने तन पर मात्र एक-एक वस्त्र धारण करके निषध से चल पड़े।

तीनों सखियां भी दमयंती के साथ चलने को तैयार हो गईं, किंतु दमयंती ने उन्हें समझाकर रोक दिया। कहा, ''मैं तो पति के सुख-दुःख में भागीदार हूं। तुम सब मेरे दुःख में व्यर्थ ही क्यों भागीदार बन रही हो! भगवान तुमको सुखी रखें। अच्छा तो यह रहेगा कि तुम तीनों भी तुरंत विदर्भ चली जाओ।''

राजा नल और दमयंती महल से निकल पड़े। पुष्कर के हृदय पर आघात-सा लगा। उसे लगा कि वह अपने भाई को निषध से निकालकर अच्छा नहीं कर रहा है।

तभी कलि और द्वापर अट्टहास कर उठे। कलि ने दमयंती के पास आकर कहा, ''क्यों दमयंती, पा लिया देवताओं को छोड़कर मनुष्य से

विवाह करने का फल?''

द्वापर ने कहा, ''अभी तो तुम्हें बड़ी-बड़ी यातनाएं मिलेंगी!''

''मैं सब सह लूंगी पर अपने स्वामी नल को कभी नहीं छोड़ूंगी।''

वे चल पड़े।

नगर के नर-नारी रो रहे थे।

नल और दमयंती चलते रहे। चलते-चलते वे एक घोर जंगल में पहुंचे। रास्ते-भर नल दमयंती को लौट जाने के लिए कहता रहा और दमयंती उसे धैर्य देती रही, ''राजन्! पत्नी पति का आधा अंग होती है। विपत्ति और अभाव में वह सुख देने वाली होती है। आप मुझसे अलग होने का विचार छोड़ दीजिए।''

कंद-मूल खाते हुए वे वनवासियों की भांति भटक रहे थे।

एक सुंदर तालाब पर उन्होंने डेरा जमाया। ठंडा पानी पिया। बैठे-बैठे इधर-उधर की बातें करते रहे।

अचानक दो सुंदर हंस तालाब पर दिखाई दिए। उनके पंख सोने के थे। राजा नल लालच में आ गया। उसने अपना वस्त्र उतारकर एक हंस पर डाला।

हंस उसका वस्त्र लेकर उड़ गया। दमयंती पीड़ा से तिलमिला उठी।

दमयंती ने लंबी सांस लेकर कहा, ''हम दोनों का घोर दुर्भाग्य है!''

''सच, बुरे दिन परछाईं की भांति हमारे पीछे पड़ गए हैं।''

दमयंती के वस्त्र से ही नल ने भी अपना तन ढक लिया।

नल ने दु:खी होकर कहा, ''रानी, यह रास्ता ऋक्षवान पर्वत पार करके विदर्भ की ओर जाता है। मैं तुम्हें फिर कहता हूं कि तुम विदर्भ चली जाओ। इस घोर जंगल में किसी सुंदर स्त्री का नि:सहाय पुरुष के साथ भटकते रहना ठीक नहीं है।''

दमयंती ने आंसुओं से गद्गद कंठ से कहा, ''राजन्! मुझे बार-बार ऐसा मत कहिए। इस तरह तो मैं पीड़ा से व्याकुल होकर मर जाऊंगी। महाराज! मैं आपकी पत्नी हूं। मुझे अपना कर्तव्य पूरा करने दीजिए। मैं जीऊंगी आपके साथ और मरूंगी आपके साथ।''

दमयंती के दृढ़ निश्चय को सुनकर नल को धैर्य मिला। उसने कहा,

"दमयंती, सही अर्थ में तुम सती-साध्वी पत्नी हो।"

दमयंती इससे आश्वस्त हो गई।

दोनों धूप में घूमते-घूमते एक झोंपड़ी में पहुंचे। झोंपड़ी खाली थी। दोनों थक गए थे इसलिए झोंपड़ी में घुसकर सो गए।

दमयंती को तुरंत नींद आ गई, पर राजा नल नहीं सो सका। उसे बार-बार दमयंती की चिंता हो रही थी। वह दमयंती को ध्यानपूर्वक देखने लगा—मुरझाए हुए फूल की भांति वह मुरझा गई थी। घने केशों में धूल के कण चमक रहे थे। गोरा रंग काला-सा लगने लगा था। थकान से भरा तन श्याम हो गया था। फूल से भी कोमल पांवों में जगह-जगह रक्त रिस रहा था। राजा नल की आंख भर आई। सोचने लगा, यह बेचारी मेरे कारण सारे दु:ख उठा रही है। आह! मैं कैसा पति हूं? मेरे जैसे विवेकहीन पुरुष को मर जाना चाहिए। नहीं, मरने से तो मैं दमयंती से फिर कभी भी नहीं मिल सकूंगा। यदि इसे वन में छोड़ जाऊं तो वह अवश्य अपने पीहर पहुंच जाएगी। फिर तो कभी सुख के दिन आ सकते हैं।

इस आशा से उसे कुछ ढांढ़स बंधा। वह उठा। झोंपड़ी में एक पुरानी तलवार पड़ी थी! उसे उठाकर लाया। वस्त्र को आधा-आधा चीरा, फिर चुपचाप चल पड़ा। फिर लौटकर आया। दमयंती को देखकर करुण विलाप करने लगा। अपने-आपसे कहने लगा—'इस वन में तो भयंकर जंगली पशु, सांप और अजगर हैं...कहीं दमयंती को खा गए तो?'

उसने तुरंत अपने मन को समझाया—'दमयंती को कोई नहीं खा सकता। यह पतिव्रता है, गुणवती है, भाग्यशालिनी है। प्रभु इसकी रक्षा करेंगे।'

नल रोता-रोता बाहर चला गया।

जोर का अंधड़ चला। दमयंती की आंख खुल गई। उसे लगा, हवा सांय-सांय करके जगा रही है। उसने हठात् उठकर देखा—राजा नल उसके पास नहीं था। उसने व्याकुल होकर पुकारा, "महाराज, महाराज...!" वह अपना कटा वस्त्र देखकर चौंक पड़ी। तीर की भांति बाहर निकली। करुण क्रंदन कर उठी—"महाराज...महाराज...महाराज...!"

उसकी पुकार जंगल में प्रतिध्वनि बनकर गूंज गई। चारों ओर

'महाराज' की पुकार गूंज गई।

दमयंती की व्याकुलता बढ़ती गई। थोड़ी देर में वह चारों ओर भटकती, नल को खोजती हुई उस घोर वन की पगडंडी पर चलने लगी।

दमयंती रोते-रोते थक गई थी। उसके नयन लाल हो गए थे।

इसी समय एक व्याध उसे दिखाई पड़ा। दमयंती अपने अंगों को हाथों से छुपाने लगी। व्याध अकेली दमयंती को देखकर दुष्ट बन गया। उसकी वासना जाग उठी। इतनी सुंदर स्त्री को वह अपनी क्यों नहीं बना लेता! यह सोचकर व्याध दमयंती पर झपटा।

दमयंती ने साहस नहीं छोड़ा। उसने बिजली की तरह कड़ककर कहा, "नीच, पापी, तूने मुझे छुआ तो मैं तुझे भस्म कर दूंगी। मैं दमयंती हूं, जिसने अपने पति के सिवाय किसी के बारे में कभी सोचा तक नहीं है।"

किंतु व्याध पर दमयंती की बात का कोई असर नहीं पड़ा। वह तो वासना से अंधा हो गया था। वह नीच दमयंती की ओर बढ़ने लगा।

दमयंती ने रास्ते में पड़ी टूटी हुई लकड़ी उठा ली और तड़ातड़ व्याध को पीटना शुरू किया।

व्याध पीछे हट गया। दमयंती को लगा कि वह पापी उसका शील लूटने के लिए कोई नई युक्ति सोच रहा है। दमयंती ने भी इस बीच अपने को तैयार कर लिया। उसने कड़ककर कहा, "नीच! आगे मत बढ़ना वरना मैं तुम्हारे प्राण ले लूंगी।"

दमयंती उसके प्राण लेती, इसके पहले ही एक सांप ने व्याध को काट लिया। व्याध तड़प-तड़पकर मर गया।

दमयंती ने एक पल सुख की सांस ली। नागदेवता को प्रणाम करके बार-बार धन्यवाद दिया। इसके बाद वह घोर व्यथा से तड़प-तड़पकर रो उठी।

उसका रोना सारे जंगल में गूंज गया।

कुछ देर बाद दमयंती का हृदय हलका हो गया। उसने अपने आंसुओं को पोंछा। एक झरने के समीप जाकर उसने अपना मुंह धोया और पेड़ की छाया-तले बैठकर विश्राम करने लगी।

दमयंती की दृष्टि सूने आकाश की ओर गई। आकाश नीला था।

उसमें एक भी बादल नहीं था। उस अनंत आकाश में एक अकेला पक्षी उड़ रहा था— शांत और नीरव।

उसे देखकर दमयंती के मन में साहस का संचार हुआ। उसने सोचा कि एक अकेला पक्षी इतने बड़े आकाश में उड़ रहा है, फिर मुझे किस बात का भय है? यह पृथ्वी तो अनेक प्राणियों से भरी हुई है।

दमयंती चल पड़ी। उसने दृढ़ निश्चय कर लिया कि वह राजा नल को ढूंढ़कर ही दम लेगी।

कई दिन के बाद उसे कुछ व्यापारी मिले। ये व्यापारी बड़े ही भले और चरित्रवान थे। उन्होंने वन में भटकती दमयंती को देखा तो उनके हृदय में दया उत्पन्न हो गई।

एक ने पूछा, ''बेटी! इस घोर वन में तुम अकेली क्यों भटक रही हो?''

दमयंती जरा भी नहीं घबराई। बोली, ''आर्य! इस घोर वन में अकेला तो वही भटक सकता है, जिसका भाग्य रूठ गया हो।''

''आओ, हमारे साथ चलो। इस वन में किसी बिरले का ही भाग्य बदलता है।''

दमयंती लाचार थी ही। उन व्यापारियों के साथ चल पड़ी।

नल दमयंती से अलग तो हो गया पर उसके मन की चिंता मिटी नहीं। वह बहुत दूर चलने के बाद पुनः उसी झोपड़ी में लौट आया, लेकिन दमयंती को न पाकर वह विकल हो गया।

इधर-उधर ढूंढ़ने लगा। अंत में हारकर एक ओर चल पड़ा। सोचा—जो भाग्य में लिखा है, वही होगा। राजपाट, मान-सम्मान और गौरव खोने के बाद मैं अपनी पत्नी को भी खो बैठा हूं तो कोई बड़ी बात नहीं। यह सब मेरे भाग्य की बात है।

यह सोचकर वह पहाड़ी वन की हरी-भरी घाटियों में चलता रहा। चलते-चलते वह एक तालाब के समीप पहुंचा। वहां घना झुरमुट था। उस झुरमुट में से अचानक आवाज आई, ''राजन्! मुझे बचाओ। राजा नल, मेरी रक्षा करो, मैं जल रहा हूं!''

राजा नल उस पुकार की ओर भागा। उसको ज्ञात हुआ कि अग्नि

में कोई प्राणी जल रहा है? नल को अग्नि का वरदान था। इसलिए वह अग्नि की स्तुति करके आग में घुस गया। उसमें से कर्कोटक जाति के एक नाग को बचाकर वह बाहर लाया। कर्कोटक ने उसे बहुत ही धन्यवाद दिया।

उसने राजा नल को कुछ कदम चलने को कहा। राजा नल अभी दस कदम ही चला था कि कर्कोटक नाग ने उसे काट लिया। राजा नल का रूप विष के प्रभाव से कुरूप हो गया। उसका रंग काला पड़ गया।

राजा नल ने घृणा से कहा, ''दुष्ट नाग, ऐसी कृतघ्नता तो मैंने पृथ्वी पर नहीं देखी! जिस व्यक्ति ने तुम्हारे प्राणों की रक्षा की, उसको तूने यह पुरस्कार दिया?''

कर्कोटक हँसकर बोला, ''राजा नल, मैंने इस स्थिति में यह बहुत ही उत्तम किया है। इससे तुम अपनी असलियत छुपाकर रख सकोगे। यहां से तुम कोसलपति राजा ऋतुपर्ण के पास जाओ। अपना नाम बाहुक सूत रख लो। नगर में तुमको बड़ी प्रतिष्ठा मिलेगी। जब तुम्हें पुन: असली रूप में आना हो तो इन वस्त्रों को पहन लेना। क्यों राजा, अब तो तुम मुझसे नाराज नहीं हो?''

''नहीं कर्कोटक, मैं तुमसे बहुत ही प्रसन्न हूं।'' नल ने कहा।

राजा नल अयोध्या की ओर चल पड़ा। वहां उसने राजा ऋतुपर्ण के सामने अपने गुणों का प्रदर्शन किया।

राजा ने इतने गुणों वाले व्यक्ति को अपने पास रख लिया।

राजा नल का मन दमयंती के लिए बेचैन रहता था। वह चाहता था कि उसे किसी प्रकार बस, इस बात का पता लग जाए कि दमयंती जीवित है और सुख से है।

दमयंती ने चेदि देश की महारानी को अपनी सारी व्यथा-कथा सुनाई। रानी ने उसे शरण दी।

विदर्भराज भीम को भी इस बात का पता चल गया था कि राजा नल जुए में अपना सब कुछ हारकर दमयंती के साथ कहीं चला गया है।

राजा भीम ने तुरंत ही चारों ओर विभिन्न दूत नल-दमयंती को खोजने के लिए भेज दिए।

सुदेव नामक ब्राह्मण ने चेदि राज्य में दमयंती का पता लगा लिया और उसे साथ लेकर विदर्भ लौट आया। राजा भीम बहुत ही प्रसन्न हुआ और उसने सुदेव को एक हजार गायों का पुरस्कार दिया।

रानी ने अपनी पुत्री दमयंती के पीले मुख को देखा।

दमयंती ने एकांत में अपनी मां से कहा, ''मां, मैं बिना अपने पति के जीवित नहीं रह सकती। आप शूरवीर राजा नल की खोज कीजिए।''

रानी दमयंती के दु:ख से दु:खी हो गई। वह अपनी बेटी को सांत्वना देने लगी।

राजा भीम ने दमयंती को समझाया कि मेरे दूत शीघ्र ही नल को खोजकर ले आएंगे। तुम जरा भी चिंता मत करो।

राजा भीम ने नल को ढूंढ़ने का एक नया ही तरीका निकाला। उसने अपने दूतों से कहा कि वे नगरों में जा-जाकर कहें कि एक राजा अपनी सुंदर, सुशील और धर्मपरायण पत्नी को जंगल में अकेला छोड़ आया। वह इतना क्रूर विश्वासघाती था कि उसने उस बेचारी का आधा वस्त्र भी ले लिया। तो भी उस धूर्त्त के लिए उसकी रानी अब भी दिन-रात रोती है। जिस किसी को भी वह मिल जाए, उसे दुतकारे।

इस बात ने बहुत ही प्रभाव डाला।

एक दूत का नाम पर्णाद था। वह अयोध्या में पहुंचा। उसने ऋतुपर्ण के पास जाकर राजसभा में यह बात कही।

एकांत में राजा का बाहुक नामक सारथी उसके पास आया। दु:ख-भरे स्वर में बोला, ''भाई, किसी पर इतना बड़ा आरोप मत लगाओ। सभी तो भाग्य के सताए हुए होते हैं। संकट में पड़कर उस अभागे राजा से भी गलती हो गई होगी। तुम विश्वास करो, वह दुखियारा रात-दिन अपनी पत्नी के वियोग में जल रहा होगा। कितनी मर्मांतक वेदना वह पा रहा होगा, इसका अनुमान तो वही लगा सकता है जिसकी पत्नी उससे बिछड़ गई हो।''

पर्णाद और कठोर स्वर में बोला, ''भाग्य के भरोसे पत्नी से छल करना कितना घातक है? अरे! पुरुष ही इतनी कायरता दिखाएगा, तब नारी की रक्षा कौन करेगा?''

''तुम कुछ भी कहो, विप्रवर! पर मैं इतना ही कहूंगा कि शायद

राजा नल दया का पात्र है!''

पर्णाद समझ गया कि यह बाहुक अवश्य ही राजा नल को जानता है।

वह उसी समय विदर्भ लौट आया। उसने राजा भीम को सारा वृत्तांत सुना दिया। वह दमयंती के पास आया।

उससे सारी बात सुनकर दमयंती ने कहा, ''वे ही मेरे पतिदेव राजा नल हैं। ऐसा मेरा रोम-रोम कह रहा है।''

''लेकिन वे तो बड़े कुरूप हैं।''

''कुछ भी हो, मेरा मन कभी भी झूठी साक्षी नहीं देता।''

पर्णाद को फिर भी विश्वास नहीं हुआ। दमयंती ने तुरंत ही एक चाल चली। उसने राजा भीम से कहा, ''आप एक बार फिर मेरे स्वयंवर की घोषणा करें। इसके लिए आप केवल राजा ऋतुपर्ण को ही कहलाएं। समय बहुत ही कम रखें। राजा नल के सिवाय इतने कम समय में कोई भी रथ विदर्भ नहीं ला सकता। इससे सत्य का और पता लग जाएगा कि वह बाहुक नाम का सारथी क्या राजा नल ही है।''

तुरंत ही राजा ऋतुपर्ण को दमयंती के स्वयंवर की सूचना दी गई।

दमयंती को एक बात का भय भी हुआ कि कहीं यह समाचार सुनते ही राजा नल आत्महत्या न कर ले? इस आशंका से वह व्याकुल हो उठी।

राजा ऋतुपर्ण ने तुरंत बाहुक को बुलाया और कहा, ''बाहुक! हमें दमयंती के स्वयंवर में आज ही जाना है। तुम रथ तैयार करो।''

''दमयंती का स्वयंवर?'' बाहुक चौंक पड़ा। पीड़ा से कराहता हुआ बोला, ''नहीं महाराज, नहीं! दमयंती का स्वयंवर कैसे हो सकता है? वह तो राजा नल की पत्नी है। विवाहिता है।''

''हमें इससे क्या लेना-देना?''

राजा नल का हृदय टूट गया।

उसे जरा भी आशा नहीं थी कि उनकी रूपवती, गुणवती और धर्मपरायण पत्नी एक दिन में इतना बदल जाएगी। उसे लगा कि कोई भी नारी विश्वास करने योग्य नहीं होती।

ऋतुपर्ण ने सोच में डूबे नल से कहा, ''बाहुक! तुम किस चिंता में पड़ गए? तुरंत रथ तैयार करो।''

बाहुक ने तुरंत ही रथ तैयार किया।

रथ जैसे ही विदर्भ में प्रवेश किया वैसे ही बाहुक बना नल उदास हो गया।

दमयंती के हृदय में आशा की लहरें मचलने लगीं। उसने तुरंत ही केशिनी को भेजा। केशिनी ने जाकर देखा तो उसके हृदय पर बड़ा आघात लगा— यह तो अत्यंत ही काला और कुरूप व्यक्ति है। इसकी तो बांहें तक छोटी हैं!

दमयंती को केशिनी ने सब कुछ बता दिया। दमयंती का मुख और पीला पड़ गया। फिर भी उसने धैर्य नहीं छोड़ा।

उसने केशिनी से कहा, ''मुझे विश्वास नहीं होता, केशिनी! इस पृथ्वी पर इतना तेज रथ हांकने वाला कोई और नहीं है। मैं स्वयं उनकी परीक्षा करूंगी। मैं सती स्त्री हूं। मुझसे मेरा पति कहां छुपकर जाएगा? चलो महाराज के पास।''

दमयंती अपने पिता राजा भीम के पास पहुंची। उसने बाहुक से मिलने की आज्ञा चाही। किंतु राजा ने अस्वीकार कर दिया। कहा, ''बेटी, लोक-व्यवहार में ये बातें अच्छी नहीं लगती हैं। कहीं यह राजा नल नहीं हुआ तो सूत बाहुक तुम्हारे बारे में क्या सोचेगा?''

दमयंती को राजा भीम की बात ठीक लगी। पर उसने परोक्ष रूप से परीक्षा करने की ठानी।

उसने केशिनी के साथ अपने दोनों बच्चों को भेजा। उन बच्चों को देखते ही राजा नल का हृदय स्नेह से भर आया। उसने उन दोनों बच्चों को गोद में उठा लिया और प्यार से चूमने लगा। केशिनी ने पूछा, ''क्या बात है, बाहुक! तुम इन बच्चों को देखकर गद्‌गद क्यों हो गए? तुम्हारी आंखें क्यों भर आईं?''

राजा नल ने रुंधे स्वर में कहा, ''मेरे भी ऐसे ही दो बच्चे हैं।''

''क्या वे...''

''नहीं, नहीं, केशिनी, वे मरे नहीं हैं। वे एकदम तंदुरुस्त और अच्छे हैं।''

केशिनी ने हठात् पूछा, ''तुम मेरा नाम कैसे जान गए, सूत''

राजा नल भी कम चतुर नहीं था। वह बोला, ''तुम रानी दमयंती की

विशेष दासी हो, तुम्हें भला यहां कौन नहीं जानता!''

केशिनी ने झटपट आकर दमयंती को सारी बातें बताईं।

दमयंती ने उत्साह से कहा, ''हो न हो, यह मेरा नल ही है। अवश्य ही यह शापित हो गया है। किसी माया ने इसके सौंदर्य को हर लिया है।''

वह एक पल रुककर बोली, ''जाओ, तुम महाराज ऋतुपर्ण से कहो कि आज दमयंती आपके बाहुक के हाथ का भोजन खाना चाहती है।''

केशिनी ने तुरंत ऋतुपर्ण से कहा। ऋतुपर्ण ने बाहुक को आज्ञा दे दी।

बाहुक ने भोजन बनाने से मना कर दिया। ऋतुपर्ण ने क्रोध से कहा, ''बाहुक! हम तुम्हारे स्वामी हैं! हमारी आज्ञा की अवहेलना का दंड तुम जानते ही हो? हम तुम्हें शूली पर चढ़वा सकते हैं।''

राजा नल ने झुंझलाकर कहा, ''महाराज! आप समझते क्यों नहीं! मेरी भी अपनी कुछ विवशता हो सकती है!''

''नहीं, बाहुक, तुम्हें हमारा अपमान नहीं करना चाहिए।''

अब बाहुक विवश था। वह संघर्ष में झूलता रहा। उसने सोचा—यदि उसने खाना बना दिया तो पकड़ा जाएगा। यदि नहीं बनाया तो महाराज ऋतुपर्ण का अपमान होगा।

राजा नल बड़ी देर तक एकांत में सोचता रहा। अंत में उसने निर्णय किया कि उसे अब अपने-आपको प्रकट कर लेना चाहिए। अब रहस्य अधिक नहीं रह सकता।

राजा नल के मन में कुछ शंकाएं और थीं, उन्हें दूर करना चाहता था। वह दमयंती के पास गया। प्रार्थना की, ''रानीजी, आप मुझसे खाना क्यों बनवाना चाहती हैं? आपके पास तो एक से बढ़कर एक पाकशास्त्री हैं।''

दमयंती ने झट-से कहा, ''मैं आज अस्वादिष्ट भोजन करना चाहती हूं।''

''फिर मैं ही बनाऊंगा।'' नल ने अपना निर्णय सुनाया, ''लेकिन इसके पहले मैं आपसे एक बात पूछना चाहता हूं।''

''पूछिए।''

''कोई पत्नी अपने श्रेष्ठ पति और बच्चों को छोड़कर दूसरा विवाह

क्यों करती है?''

''इसलिए कि उसका पति निर्दयी कसाई की भांति सत्यपरायण, रूपवती और उसके बच्चों की मां जैसी सुयोग्य पत्नी को वन में अनाथ-सी छोड़कर चला जाता है। बाहुक! जो पति अपनी पत्नी की रक्षा नहीं कर सकता, उसे पति कहलाने का क्या अधिकार है? ऐसे कायर और विश्वासघाती पति के संग पत्नी क्यों रहे? बोलो, बाहुक!''

नल ने लंबी सांस लेकर कहा, ''जब मनुष्य के बुरे दिन आते हैं तब उसकी बुद्धि भी उसकी शत्रु हो जाती है। वह बेचारा अपनी रानी के सामने शायद अब इसीलिए नहीं आता होगा, कि वह अपने को अपराधी समझता है। उसे इतना कठोर दंड तो आपको नहीं देना चाहिए। सच, मैं आपको कहता हूं कि जिस दिन आपके पति को यह मालूम होगा कि आपने विवाह कर लिया है, वह अपने प्राण त्याग देगा।''

दमयंती तुरंत नल की पीड़ा को समझ गई। वह तेज स्वर में बोली, ''त्याग दे, उसकी मुझे कोई चिंता नहीं।''

नल आवेश में चीख पड़ा, ''दमयंती!''

और दमयंती ने तुरंत हाथ पकड़कर कहा, ''महाराज, अब अपने-आपको मत छुपाइए! मैंने यह स्वयंवर का नाटक केवल आपको पाने के लिए ही रचा था। दमयंती को राजा नल के सिवाय कोई 'दमयंती' नहीं कह सकता। आखिर, मैंने आपको पा ही लिया!''

नल ने सिर झुकाकर कहा, ''हां दमयंती, मैं ही तुम्हारा अभागा और पापी पति हूं।''

''नहीं, महाराज, ऐसा मत कहिए।'' दमयंती ने विकल होकर कहा, ''पर आपकी यह दुर्दशा कैसे हो गई? सूर्य की तरह तेजस्वी राजा नल अंधेरे के समान काले कैसे हो गए?''

''दमयंती! इसकी तुम चिंता मत करो। मैं कुछ ही देर में बिलकुल ठीक हो जाऊंगा।''

तब दमयंती भागकर अपने मां-बाप के पास गई। उसने सारे समाचार सुनाए। थोड़ी देर में राजा भीम एवं उसकी रानी भागकर राजा नल के पास आए।

तब तक राजा नल ने कर्कोटक के दिए वस्त्र पहन लिए थे। उससे

वह पहले की भांति दिव्य कांतिमान पुरुष बन गया था।

ऋतुपर्ण को जैसे ही राजा नल के बारे में पता लगा, वह भागकर आया। उसने राजा नल को गले लगाकर क्षमा मांगी, ''राजन्! मुझे इसका क्या पता था! अनजाने में जो गलती हुई है, उसके लिए मैं क्षमा चाहता हूं।''

नल ने नम्र स्वर में कहा, ''महाराज, मनुष्य समय के संकेत पर चलता है। आपको क्या दोष दूं, मैंने तो स्वयं अपनी पत्नी के साथ विश्वासघात तक किया! समय बड़ा बलवान होता है।''

इस तरह चर्चा करते हुए सांझ हो गई। विदर्भ के मंदिरों और द्विज-घरों में शंख बजने लगे।

दमयंती को उसकी तीनों सहेलियां घेरे हुई थीं।

केशिनी ने वन्या से कहा, ''आज तो रानीजी को केसर-स्नान कराया जाए।''

''नहीं केशिनी!'' वन्या बोली, ''मैं चाहती हूं, केवड़ा के इत्र...''

सुहासिनी ने हँसकर कहा, ''आज तो रानीजी के अंग-अंग से ही सुगंध आ रही है। भगवान बड़ा दयालु है।''

तभी राजा नल के आने का समाचार मिला। तीनों महल से निकल गईं।

राजा नल को देखते ही दमयंती उससे लिपट गई। उसके नयनों से अश्रु टपकने लगे। राजा नल धैर्य देता रहा।

दमयंती ने कहा, ''अब हम क्या करेंगे?''

राजा नल की भृकुटियों में बल पड़ने लगे। कठोर स्वर में बोले, ''मैं देवताओं की शक्ति को लेकर पुष्कर का नाश कर दूंगा।''

दमयंती ने नल को शांत किया, ''नहीं महाराज, आपको मैं ऐसा नहीं करने दूंगी।''

''क्यों नहीं करने दोगी? जिस भाई ने राक्षस की भांति कठोर होकर अपनी भाभी व भाई को राज्य से निकाल दिया, वह दया के योग्य नहीं।''

दमयंती ने दृढ़ स्वर में कहा, ''महाराज! मैं आपकी पत्नी और उसकी भाभी हूं। भाभी मां के समान होती है। मां अपने दुष्ट बच्चे को भी गले लगाती है।''

नल झुंझलाकर बोला, ''लेकिन...''

''बस, महाराज! आप कुछ भी कहिए, मैं पुष्कर का अहित नहीं होने दूंगी। महाराज! इसी स्थल पर आकर नारी महान बनती है। आपको पुष्कर को क्षमा करना ही पड़ेगा।''

नल ने दमयंती की प्रशंसा की। उसे ममता की देवी कहा।

तभी इंद्रसेन और इंद्रसेना को केशिनी ले आई। राजा नल अपने बच्चों को एक साथ गोद में उठाकर प्यार करने लगा।

पुष्कर अवगुणों का घर और अत्यंत ही निष्क्रिय हो गया था। द्वापर और कलि दोनों उसे कुपथ पर डाल रहे थे। सहसा एक दूत ने आकर उसे सूचना दी, ''महाराज नल पधार रहे हैं।''

कलि ने द्वापर को एकांत में ले जाकर कहा, ''भाई, हमारा समय समाप्त हो गया है। अब हमें यहां से खिसक जाना चाहिए, वरना बड़ी दुर्गति होगी।''

द्वापर और कलि चुपचाप चले गए। उनके जाने का पता भी पुष्कर को नहीं लगा।

अब पुष्कर ने थोड़ी वास्तविकता को समझा। पर सच्चाई को समझकर भी उसकी आंखें नहीं खुलीं।

पुष्कर स्वयं नगर के द्वार पर आकर खड़ा हो गया। उसने राजा नल का रथ रोक दिया। उसके सैनिकों ने राजा नल को सपरिवार घेर लिया।

राजा नल ने पूछा, ''क्या बात है? मुझे अपने नगर में क्यों नहीं घुसने दिया जा रहा है?''

पुष्कर ने उपेक्षा से कहा, ''कौन-सा नगर? यह नगर तो मेरा है।''

''हां पुष्कर, यह नगर तेरा है, फिर भी मैं एक नागरिक के रूप में तो रह सकता हूं।''

''नहीं।''

''तो फिर आओ, हम एक बार और हार-जीत से निर्णय कर लें।''

नल ने दमयंती की ओर देखकर बड़े ही संयत स्वर में कहा। वह चाहता तो पांचों देवताओं के वरदान का लाभ उठाकर पुष्कर का सर्वनाश कर सकता था। दमयंती ने संकेत किया कि वे शांत रहें।

पुष्कर जोर से खिलखिला पड़ा। बोला, ''आप हार-जीत करेंगे? पर आप दांव पर क्या लगाएंगे?''

राजा नल ने कहा, ''दमयंती को।''

पुष्कर का चेहरा फक्-सा रह गया।

उसने कोई उत्तर नहीं दिया। वह जुआ खेलने को तैयार हो गया।

इस बार पहले ही दांव पर पुष्कर हार गया। देखते ही देखते पुष्कर अपना सर्वस्व खो बैठा।

राजा नल ने फिर पूछा, ''बोलो, अब क्या चाहते हो? तुम्हारे साथ मैं कैसा बरताव करूं?''

पुष्कर ने कहा, ''कुत्ते जैसा।''

तभी दमयंती ने बीच में आकर कहा, ''नहीं महाराज, यह मेरा देवर है। देवर बेटे के समान होता है। मैं इसे कोई भी दंड नहीं भोगने दूंगी।''

पुष्कर ने चीखते हुए कहा, ''नहीं भाभी, मुझ जैसे नीच पर आपको दया नहीं करनी चाहिए। मैं पापी हूं, मुझे जलती आग में डलवा दीजिए?''

दमयंती ने पुष्कर को शांत करके कहा, ''नहीं, पुष्कर भैया! दोष आप दोनों का ही नहीं है, दोष है बुरी संगति का। यह तो कलि और द्वापर का षड्यंत्र था और हम सबके भाग्य का दोष था! अधिक, पश्चात्ताप मत करो। महाराज, पुष्कर को क्षमा कर दीजिए।''

नल ने पुष्कर को गले से लगा लिया।

पुष्कर बालक की तरह रोने लगा। उसी समय पांचों देवता और अन्य प्रतिष्ठित लोग भी आ गए।

नल ने घोषणा की, ''मैं पुष्कर को क्षमा करता हूं और उसके सारे अधिकार उसे वापस दे रहा हूं।''

सभी ने हर्षध्वनि की।

राजा नल ने कहा, ''इस अवसर पर एक बात कहना चाहूंगा कि यदि दमयंती नहीं होती तो आज आप सबको यह शुभ दिन देखने को नहीं मिलता। यही नारी...''

दमयंती ने लज्जा से सिर झुकाकर कहा, ''देवता आए हुए हैं...उनकी प्रार्थना करो!''

नल ने देवताओं और गुरुओं को प्रणाम किया। इस प्रकार निषध में एक बार फिर पहले वाली प्रसन्नता और शांति आ गई।

सीता

एक दिन की बात है। मिथिला-नरेश जनक खेत में टहल रहे थे, उस समय उन्हें एक नन्ही बच्ची मिली। राजा जनक ने उसे उठा लिया। बच्ची बहुत प्यारी थी। भूमि की दी हुई— भूमिजा। जनक ने उसका लालन-पालन किया।

उसका नाम सीता पड़ा।

सीता बुद्धिमान, धैर्यशील और ममता की प्रतिमूर्ति थी।

राजा जनक स्वयं शास्त्रों के ज्ञाता एवं धर्मात्मा और दानी थे।

चूंकि सीता की प्रतिभा विलक्षण थी, इसलिए राजा जनक और उनकी पत्नी भूमिजा सीता का लालन-पालन बड़े प्रेम से करते थे। सीता की चचेरी तीन बहनें और भी थीं। जब वे मिलती थीं तब उनके बीच स्नेह का सागर उमड़ पड़ता था।

धीरे-धीरे सीता बड़ी होने लगी।

राजा जनक को उसके विवाह की चिंता होने लगी। पर सीता कोई साधारण नारी नहीं थी। वह विलक्षण गुणों वाली अत्यंत सुंदर नारी थी।

उसके लिए वर भी असाधारण प्रतिभा व क्षमता वाला होना चाहिए!

राजा जनक ने उसके लिए स्वयंवर का आयोजन किया।

राजा जनक के पास शिवजी का एक अद्भुत धनुष था। वह धनुष किसी भी प्राणी से खिसकाया तक नहीं जा सकता था।

राजा जनक ने ढिंढोरा पिटवाया कि जो कोई शिव-धनुष को तोड़ेगा, उसे ही सीता का वर माना जाएगा और उसके साथ ही सीता विवाह करेगी।

राजा की इस घोषणा के साथ मिथिला में बड़े-बड़े शूरवीर राजाओं का जमघट लग गया। इतना बड़ा जमावड़ा सहज नहीं था। देश-प्रदेश के

राजा-महाराजा, राजकुमार और शूरवीर इस स्वयंवर में सम्मिलित होने के लिए आए।

मर्यादापुरुषोत्तम राम अपने भाई लक्ष्मण के साथ विश्वामित्र के आश्रम में आए हुए थे। राक्षस मुनियों को तंग करते थे तथा उनके यज्ञ में बाधा पहुंचाया करते थे।

जब विश्वामित्र को यह समाचार मिला तब वे भी राम और लक्ष्मण के साथ स्वयंवर में सम्मिलित होने के लिए आए।

उन्हें बड़े आदर से ठहराया गया। एक सुंदर पर्णकुटी में राम-लक्ष्मण और महर्षि ठहरे थे।

उसके चारों ओर बगिया थी जिसमें भांति-भांति के फूल खिले हुए थे। वहां का वातावरण बहुत ही मोहक था।

एक दिन राम उस बगीचे में प्रातः की शीतल हवा ले रहे थे कि उनकी दृष्टि सीता पर पड़ी।

राम उस अद्‌भुत रूप की सरिता को देखकर स्वयं प्रवाहित हो गए।

उधर सीता भी राम को मुग्ध भाव से दृष्टि जमाकर देखती रही।

प्रणय के अंकुर फूटे।

दोनों के हृदय में जैसे मधुर संगीत बज गया हो।

सीता ने सोचा—'मैं इनके योग्य हूं। यह तेजस्वी और करुणा की प्रतिमूर्ति ही मेरे अनुकूल वर हो सकते हैं।'

राम ने सोचा—'यह असीम धैर्य की प्रतिमा सीता ही मेरी भार्या होकर मेरे जीवन के सुख-दुःख की सहभागिनी हो सकती है।'

दोनों कई क्षणों तक मंत्रमुग्ध-से खड़े रहे।

यदि सहेली आकर सीता का ध्यान भंग नहीं करती तो वह फूल चुनना बिसारकर बस, राम को देखती ही रहती।

''क्या कर रही हो, सीता?''

''फूल चुन रही हूं।''

सहेली ने झट से चुटकी ली, ''कौन-से फूल चुन रही हो?''

''धत्!'' सीता लाज से घिरकर भाग गई।

राम के होठों पर एक अर्थ-भरी मुसकान दौड़ गई।

सीता राम के ध्यान में और राम सीता के ध्यान में मग्न रहे।

अंत में स्वयंवर का दिन आ गया।

राजा जनक की सभा बड़े-बड़े योद्धा, धर्मात्मा और यशस्वी राजाओं से भरी थी।

मंच पर मखमली चादर बिछी हुई थी। उस पर भगवान शिव का धनुष रखा हुआ था। देखने में छोटा पर अद्‌भुत क्षमता वाला था शिव का धनुष।

एक ओर राम-लक्ष्मण बैठे थे। दरबार के ऊपर खुले झरोखों में राजा जनक के परिवार की स्त्रियां बैठी थीं।

एक झरोखे में सीता अपनी चचेरी बहनों के साथ बैठी-बैठी राम को देख रही थी।

उर्मिला ने कहा, ''पता नहीं, हमारी दीदी के भाग्य में कौन लिखा है!''

सीता ने उसकी ओर प्रश्न-भरी दृष्टि से देखकर कहा, ''शिव-धनुष को तोड़ना किसी साधारण व्यक्ति का काम नहीं है। उसे वही तोड़ सकता है जो महाबली के साथ-साथ पवित्रता और तप का देवता हो।''

राजा जनक ने खड़े होकर सबको प्रणाम किया। फिर सभी उपस्थित सज्जनों पर दृष्टिपात करके कहा, ''उपस्थित नरेशगण, शूरवीर और पूज्य ऋषिवर! मैंने अपनी बेटी सीता का स्वयंवर किया है। मेरा परम सौभाग्य है कि इस स्वयंवर में देश-प्रदेश के बड़े-बड़े राजा-महाराजा आए हैं। मैं तो देखकर यह भी कह सकता हूं कि प्राय: सभी महान् जन आए हैं। कौन ऐसा भाग्यशाली है जो मेरी बेटी का वरण करेगा! बात स्पष्ट है कि वही मेरी बेटी का वरण करेगा जो इस शिव-धनुष को तोड़ेगा। मैं गुरुवरों, श्रेष्ठ मुनियों की आज्ञा से स्वयंवर की कार्यवाही आरंभ करता हूं।''

सभी गुरुजनों ने राजा को आशीर्वाद दिया।

अब बड़े-बड़े शूरवीर राजा-महाराजा उठकर शिव-धनुष को तोड़ने की चेष्टा करने लगे। जब वे उठते थे तब ऐसा लगता था जैसे उनके लिए शिव-धनुष को तोड़ना बच्चों का खेल है और वे चुटकी बजाते शिव-धनुष को तोड़ देंगे, पर शिव-धनुष उनसे हिला तक नहीं।

जब कोई राजा शिव-धनुष को तोड़ने के लिए उठता था तब सीता उदास हो जाती थी और वह प्रभु से मन-ही-मन प्रार्थना करती थी कि हे भगवान! यह धनुष टूटे नहीं। जब नहीं टूटता तब सीता चैन की एक सांस लेती थी।

अंत में उसका धैर्य जाता रहा। उसने उर्मिला से पूछ ही लिया, ''उर्मिला!''

''हूं, दीदी।''

''दशरथनंदन राम धनुष को क्यों नहीं तोड़ते! बैठे-बैठे देख रहे हैं।''

उर्मिला ने तपाक से कहा, ''देखने दो, हमारा इससे क्या बनता-बिगड़ता है।''

''तू समझती क्यों नहीं। कितने सुकुमार और तेजस्वी हैं राम!''

''अब समझी! सुन दीदी, हमारे भाग्य में जो वर लिखा है, वही मिलेगा! यह विधाता का लेख है। उसमें परिवर्तन की कोई संभावना नहीं।''

सीता ने उसे मर्मभेदी दृष्टि से देखा, फिर वह मुसकरा पड़ी।

एक-एक करके सारे राजा असफल हो गए। उनकी शूरता, साहस और अभिमान मिटता चला गया, साथ ही राजा जनक भी उदास होते गए। उन्हें लगा कि कहीं यह शिव-धनुष नहीं टूटा तो उनकी कन्या सीता क्या कुंवारी रहेगी? वे पीड़ा से भर आए।

जब सभी राजा निराश हो गए तब राम उठे। सीता के चेहरे पर शांति छा गई। एक मुसकान दौड़ गई।

उर्मिला ने उपहास से कहा, ''यदि दशरथनंदन राम ने धनुष नहीं तोड़ा तो?''

सीता ने कहा, ''अब शंका की जगह वस्तुस्थिति को देखो। राम उठ गए हैं। वे विश्वामित्र को प्रणाम कर रहे हैं।''

राम ने सबको प्रणाम किया और मन-ही-मन शिव-आराधना की। फिर वे शिव-धनुष की ओर बढ़े।

एक बार उन्होंने उपस्थित लोगों को देखा। फिर शिव-धनुष को सिर नवाकर देखते-देखते उठा लिया और के टुकड़े कर दिए।

सीता और उर्मिला प्रसन्नता के मारे उछल पड़ीं। उनकी प्रसन्नता का कोई पारावार नहीं था।

सीता का रोम-रोम प्रणयाभिभूत होकर राम-राम का मौन उद्घोष कर उठा।

अपार वैभव के साथ राम-लक्ष्मण, भरत-शत्रुघ्न के विवाह सीता और उसकी तीनों बहनों के साथ हो गए।

सीता सबको भा गई। वह एक समर्पित स्त्री थी। रात-दिन वह सेवा में लगी रहती थी। दशरथ से लेकर छोटे-छोटे दास-दासी भी सीता से प्रसन्न थे।

एक दिन राम और सीता आपस में वार्ता कर रहे थे। सीता राम के चरण दबा रही थी। राम ने पूछा, ''सीते! तुम क्या बनना चाहती हो? तुम्हारी क्या इच्छा है?''

सीता ने मुसकराकर कहा, ''प्रभु! मैं राममय होना चाहती हूं। मैं अपने-आपको आपमें विलीन करना चाहती हूं।''

''और मैं भी सीतामय होना चाहता हूं।''

''आप पुरुष हैं। आप यदि सीतामय हो गए तो पृथ्वी का भार कौन संभालेगा? सुना है, पिताश्री आपको अयोध्या का राजा बनाना चाहते हैं। इस घोषणा से सभी लोग प्रसन्न हैं। सारी अयोध्या में खुशी की लहर दौड़ गई है।''

राम ने मुसकराकर कहा, ''सीते! किसी के कहने से कुछ नहीं होता। सभी कुछ भाग्य के अनुसार होता है। भाग्य की लीला विचित्र होती है। कल का क्या, आने वाले एक पल का भी किसी को पता नहीं है। भविष्य अज्ञात होता है।''

''पर जो प्रत्यक्ष है, उसके लिए भी क्या प्रमाण की जरूरत पड़ेगी?''

''प्रत्यक्ष भी कभी-कभी भ्रामक हो सकता है।''

सीता ने कोई उत्तर नहीं दिया।

पर यह बिलकुल सही निकला—राम को राज्याभिषेक के बदले

चौदह वर्ष का वनवास मिल गया। सारी खुशियां असह्य दु:ख में बदल गईं।

राम के वन-प्रस्थान के समय सीता भी तैयार हो गई। उसे सभी ने समझाया कि वनवास का जीवन अत्यंत ही कठिन होता है, पर सीता नहीं मानी। वह संपूर्ण वैभव छोड़कर राम के साथ वन में चली गई।

वह वनवास के दिनों में राम की बड़ी सेवा करती थी। उनके चरणों को धोती थी। पांव दबाती थी। इस तरह सीता राममय होती जा रही थी।

वनवास के दुर्दिन समाप्त भी नहीं हुए थे कि एक दिन राम और सीता खड़े थे, तभी रावण की बहन शूर्पणखा आई और राम को रिझाने लगी।

राम ने उससे कहा, ''तुम रावण की बहन हो और मैं सीता का राम। मैं सीता के होते हुए दूसरे विवाह के बारे में सोच भी नहीं सकता। मैं मर्यादा का रक्षक हूं। मर्यादा ही मेरा धर्म है।''

शूर्पणखा तब लक्ष्मण को रिझाने लगी। लक्ष्मण को उत्तेजना शीघ्र आती थी। उसे क्रोध भी विशेष रूप से आता था।

बातों ही बातों में उसने शूर्पणखा की नाक काट दी।

नारी के रूप को विकृत करना सीता को अच्छा नहीं लगा। पर वह लक्ष्मण को कहती भी क्या?

लेकिन शूर्पणखा ने अपने तिरस्कार की सारी कथा अपने भाइयों को सुनाई।

उसके भाई राम-लक्ष्मण को मारने के लिए आ गए।

जब खर-दूषण को राम-लक्ष्मण ने मार डाला तब रावण को आघात लगा। उसने सोचा-विचारा, फिर निश्चय किया कि वह अपनी बहन का प्रतिशोध लेगा। रावण ने सीता का हरण करने का विचार कर लिया।

वह मारीच के पास गया। उसे समझाकर और धमकी देकर उसने स्वर्ण-मृग बनने के लिए विवश किया।

मारीच स्वर्णमृग बनकर राम की कुटिया की ओर गया।

सीता ने उस हिरण को देखा। उस अद्‌भुत स्वर्णमृग को देखकर उसके मन में उसे पा जाने की इच्छा जाग उठी।

यह स्त्री की दुर्बलता है कि आकर्षक वस्तु के प्रति उसका मोह

शीघ्र जाग्रत हो जाता है। उस दुर्बलता का शिकार सीता भी हो गई।

उसने राम से कहा, ''नाथ! यह मृग कितना सुंदर है! लग रहा है—स्वर्ण का मृग हो! क्या आप इसे मेरे लिए ला सकते हैं?''

राम ने उस मृग को देखकर कहा, ''सीते! यह मृग मुझे विचित्र लग रहा है। ऐसा मृग मैंने कभी नहीं देखा। कहीं यह माया का न हो!''

पर सीता में नारी-हठ जाग गया और उसने राम को मृग लाने के लिए बाध्य कर दिया।

राम चले गए। स्वर्णमृग जल्दी उनके हाथ नहीं आया।

बड़ी देर हो गई तो सीता चिंतित होने लगी। उसने लक्ष्मण से कहा, ''देवरजी! आपके भाई अभी तक नहीं आए, क्या बात है?''

''मेरे भाई राम के लिए आप जरा भी चिंता न करें। पृथ्वी पर ऐसा कोई वीर पैदा नहीं हुआ है जो उन्हें जरा भी हानि पहुंचा सके।''

सीता राम की चिंता में डूबी हुई थी, तभी उन्हें सुनाई पड़ा—'हा सीते...! हा लक्ष्मण...!'

यह आर्तनाद सुनकर सीता विकल हो गई।

वह लक्ष्मण से बोली, ''लक्ष्मण! मेरा मन कहता है कि राम संकट में हैं। यह उन्हीं की पुकार है। तुम तुरंत जाओ और...''

सीता उस ओर बढ़ने लगी, पर लक्ष्मण ने उसे रोक दिया। कहा, ''माता! संसार में ऐसा कोई नहीं है जो भैया राम को मार सके।''

पर सीता का मन नहीं माना। वह लक्ष्मण को बार-बार जाने के लिए कहने लगी।

किंतु लक्ष्मण नहीं गया।

तब सीता ने वाचाल होकर कठोर वचन कह दिए, ''तुम अपने भाई की चिंता नहीं करते हो? शायद तुम दुर्बल हो।''

बस, लक्ष्मण आवेश से भर गया। उसने सीता के आगे एक रेखा बनाकर कहा, ''माता! मैं जाता हूं, पर चाहे कोई भी आए, आप इस रेखा से बाहर न आइएगा।''

लक्ष्मण चला गया।

रावण ने ब्राह्मण का रूप धारण कर रखा था। उसने राम की स्मृति में खोई हुई सीता को पुकारा, ''माई! भिक्षा दो।''

कई बार पुकारने के बाद सीता का ध्यान भंग हुआ। उसने उसे भिक्षा देनी चाही पर रावण ने कहा, ''माई! मुझे भिक्षा यहीं आकर दो। साधु एक बार कहीं आसन जमाकर बैठने के बाद उठते नहीं।''

सीता लक्ष्मण के द्वारा बनाई गई रेखा से बाहर आने को तैयार नहीं थी।

इस पर रावण ने धमकी दी, ''यदि तुमने मुझे भिक्षा नहीं दी तो मैं भूखा चला जाऊंगा और तुम्हें शाप दे दूंगा।''

सीता डर गई। इस संकट-वेला में ब्राह्मण का भूखा जाना उसके पति का और भी अहित कर सकता है।

वह फल-फूल लेकर लक्ष्मण की बनाई हुई रेखा से बाहर निकली।

वह जैसे ही रावण के पास गई वैसे ही ब्राह्मण-भेषधारी रावण ने उसे दबोच लिया।

सीता घबराकर बोली, ''कौन हो तुम, दुष्ट!''

रावण अपने असली रूप में आ गया। उसने कहा, ''मैं लंकापुरी का राजा रावण हूं। राक्षसों का सम्राट! सुंदरी! तुम इस तपस्वी को छोड़कर मेरे साथ लंका चलो और वैभवपूर्ण जीवन जिओ।''

सीता रो पड़ी। उसने बहुत प्रयत्न किया, पर वह छुटकारा नहीं पा सकी।

रावण उसे लेकर विमान द्वारा आकाश-मार्ग से चल पड़ा।

सीता 'राम-राम!' कहती रही।

वह रोती-चीखती और चिल्लाती रही।

रास्ते में पक्षीराज जटायु ने जब सीता का करुण क्रंदन सुना तो वह उड़ा। जब उसे 'राम-राम' सुनाई पड़ा तब वह समझ गया कि दुष्ट रावण सीता को ले जा रहा है। दशरथ से मित्रता के कारण जटायु सीता को अपनी पुत्रवधू मानता था। वह रावण पर झपटता हुआ बोला, ''दुष्ट, मिथिलेशकुमारी सीता को छोड़ दे वरना मैं तेरा वध कर दूंगा।''

पर रावण नहीं माना।

सीता ने भयातुर स्वर में कहा, ''तात! मुझे बचाओ...मुझे मेरे राम के पास पहुंचा दो...मैं राम के बिना मर जाऊंगी।''

जटायु ने उसे सांत्वना दी, ''डर मत बेटी, मैं अभी इस निशाचर को

ठिकाने लगाता हूं।''

दोनों में भीषण युद्ध होने लगा। बड़ी देर तक पक्षीराज जटायु रावण को अपने तेज पंजों से आहत करता रहा। अंत में रावण ने अपने खड्ग से जटायु के पंखों को काट डाला। जटायु घायल होकर जमीन पर गिर पड़ा।

सीता फूट-फूटकर रो पड़ी। वह बार-बार 'राम...राम' चिल्ला रही थी।

सीता ने सोचा कि राम को कैसे पता चलेगा कि रावण उसे किधर ले गया है। इसलिए वह रास्ते में अपना एक-एक गहना गिराती गई, ताकि राम उधर से आएं तो उन्हें पता चल जाए कि सीता इधर ही गई है।

रावण का विमान उड़ा जा रहा था।

विमान ऋष्यमूक पर्वत पर आया! उस समय पर्वत पर सुग्रीव अपने मंत्रियों हनुमान आदि के साथ बैठा था।

सीता ने उन्हें देख लिया। वह जोर से चिल्ला पड़ी, ''हे पर्वत पर बैठे प्राणियो! यदि मेरे राम आए तो उन्हें कहना कि आपकी सीता को पापी राक्षस रावण उठा ले गया है। उसे मेरे गहने दिखा देना, वे मुझे पहचान लेंगे।''

सीता ने अपने आंचल को फाड़कर, उसमें गहने बांधकर ऋष्यमूक पर्वत पर फेंक दिए।

रावण का विमान अब दक्षिणी छोर पार कर लंका द्वीप की ओर बढ़ गया था।

रावण प्रतिहिंसा की आग के साथ-साथ काम-वासना से भी दग्ध था।

उसने सीता को अशोक वाटिका में ठहराया। रावण की बांदियां सीता के लिए तरह-तरह के सुंदर वस्त्र, बहुमूल्य हीरे और खाने के लिए तरह-तरह के व्यंजन लेकर आईं, पर सीता ने नहीं खाए। उसने उन्हें ठुकरा दिया।

वह अशोक वाटिका में तपस्विनी की तरह रहती थी और प्रात: तप-उपवास किया करती थी।

रावण ने कुछ राक्षसी स्त्रियों का पहरा बिठा रखा था। वे कुरूप थीं

और भयंकर भी। उनके हाथों में तलवारें, त्रिशूल और फरसे होते थे। वे सब सीता को धमकाती रहती थीं और समझाती थीं कि वह रावण की पत्नी बन जाए वरना वे उसे काटकर खा जाएंगी।

राम के वियोग में दुखी सीता बड़ी निर्भीकता से कहती, ''राम के बिना मैं जीवित रहना ही नहीं चाहती। हे राक्षसियो, मुझे आप जल्दी से काटकर खा जाओ, ताकि इस देह से मेरे प्राण निकलकर राम के पास चले जाएं।''

एक दिन त्रिजटा नाम की राक्षसी आई। वह धर्म की मर्मज्ञ और मीठे वचन बोलने वाली थी।

उसने एकांत पाकर सीता को कहा, ''तुम्हारे पति और देवर कुशल से हैं। वे तुम्हें शीघ्र ही सुग्रीव की सहायता से छुड़वाने आएंगे।''

सीता ने आशंका की, ''हे सहृदया राक्षसी त्रिजटा, तुम्हारे वचनों पर मुझे विश्वास हो रहा है, पर मुझे उस पापी से हर समय भय बना रहता है—कहीं यह पापी मेरे सतीत्व को कलंकित न कर दे। मैं जानती हूं कि पतिव्रताओं के तन की आंच से पापी भस्म हो जाते हैं, पर राक्षसों के अपने अलग मंत्र-तंत्र होते हैं।''

त्रिजटा ने सीता की ओर गंभीर दृष्टि डालकर कहा, ''सीता! रावण तुम्हारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। उसे नलकूबर ने शाप दिया हुआ है। एक बार नलकूबर की पत्नी रंभा का रावण ने जबरदस्ती स्पर्श किया तो वह कुपित हो गया और उसने शाप दे दिया कि रावण किसी भी परस्त्री को विवश कर कलंकित नहीं कर सकता। करेगा तो भस्म हो जाएगा।''

सीता ने त्रिजटा का हाथ पकड़कर, गहरा निःश्वास लेकर कहा, ''तुमने मेरे मन की चिंता मिटा दी।''

त्रिजटा ने फिर कहा, ''सीते! मैंने सपने में रावण का पतन देखा है। तुम्हारे पति अवश्य ही विजयी होंगे।''

सीता को पति के विजयी होकर आने की बात से बड़ा सुख मिला।

उसी समय रावण की दासियां रावण को बुला लाईं।

रावण ने फिर प्रलोभन दिया तो सीता ने कहा, ''राक्षसराज! तुमने मुझे बार-बार अपनी रानी बनाने के लिए कहा। ऐसा कहकर तुम अपनी वाणी और मेरे कानों को क्यों अशुद्ध करते हो? मैं सीता राममय हूं।

पतिव्रता हूं। मेरे रोम-रोम में राम शब्द बसा हुआ है। तुम मुझे कभी भी नहीं पा सकोगे।''

रावण बड़बड़ाता हुआ चला गया।

अनेक दिन बीत गए।

राम की कोई सूचना नहीं मिली। सीता राम के वियोग में इतनी दु:खी हो गई कि उसने सोचा— अब राम नहीं मिलेंगे।

इधर रावण के अत्याचार भी बढ़ गए थे। सीता को अत्याचारों की चिंता न थी, चिंता थी तो अपने राम से मिलने की।

सीता अशोक वाटिका में घूमती हुई एक वृक्ष के नीचे आकर खड़ी हो गई।

उस वृक्ष पर रामदूत हनुमान छुपे बेठे थे। राम की सुग्रीव से मित्रता होने के बाद बाली का वध हुआ। फिर सुग्रीव के वीर वानर सीता की खोज में लग गए। हनुमान पहले राम-भक्त थे जो लंका में पहुंच गए।

तब सीता वृक्ष-तले चुपचाप बैठी थी।

ऊपर हनुमानजी पेड़ पर बैठे उससे मिलने के लिए बेचैन थे।

सीता राम-वियोग में इतनी व्यग्र और व्याकुल हो गई कि आत्महत्या करने की ठान ली। तभी हनुमान ने राम-वृत्तांत सुनाना शुरू कर दिया।

राम के बारे में सारी बातें सुनकर सीता ने ऊपर की ओर देखा तो हनुमान बैठे दिखाई दिए।

उन्हें देखकर सीता, 'हा राम...हा लक्ष्मण' कहके रो पड़ी।

हनुमान कूदकर उनके पास आए।

सीता ने आंसू पोंछकर पूछा, ''आप कौन हैं?''

हनुमान ने अपना परिचय बताकर कहा, ''मैं रामदूत हनुमान हूं।''

हनुमान ने अनेक तरह से विश्वास दिलाया; फिर राम-नाम अंकित मुद्रिका सीता को दी तो सीता के मन में जरा भी संदेह नहीं रहा।

हनुमान ने सीता को अपने कंधे पर बैठकर समुद्र-पार राम के पास ले जाना चाहा, पर सीता ने इस तरह जाने में कई संकट आने की आशंका बताई!

महाबली हनुमान ने फिर सारी अशोक वाटिका उजाड़ डाली।

पहरेदार भागे-भागे रावण के पास गए और हनुमान की सारी उद्दंडता के विषय में बताया। रावण ने तुरंत अपने वीर राक्षसों को भेजा। उन्होंने हनुमान को पकड़ लिया। रावण-हनुमान के बीच उग्र वार्तालाप हुआ। अंत में रावण ने हनुमान की पूंछ को कपड़े से लपेटकर तेल डाला और उसमें आग लगवा दी। बस, हनुमान ने देखते ही देखते सारी लंका को आग की लपटों में झोंक दिया और समुद्र में कूदकर अपनी पूंछ में लगी आग बुझा ली।

सीता को पहली बार लगा कि उसके परमात्मा राम और भ्रातृभक्त देवर लक्ष्मण अवश्य एक दिन उसे मिल जाएंगे।

सीता के मन का भय कम हो गया। उसने समझ लिया कि अब इस राक्षसराज रावण की रक्षा कोई नहीं कर सकता! मेरे राम भी शांत और संतुष्ट हो गए होंगे, क्योंकि वीर हनुमान ने मेरा चूड़ामणि राम के हाथों में दिया होगा तो वे उसे अवश्य पहचान गए होंगे, क्योंकि वह चूड़ामणि मेरे विवाह का स्मृति-चिह्न है।

सीता विभिन्न विचारों में खोई रही।

फिर भी रावण ने अपने प्रयास कम नहीं किए। वह बार-बार अपनी राक्षसी दासियों को भेजता था और सीता को अपनी रानी बनने के लिए तरह-तरह के प्रलोभन दिलवाता पर सीता तो ऐसी थी जो सिवाय 'राम-राम' के कुछ भी नहीं कहती थी।

उस दिन रावण फिर आया।

विभीषण के मन में राम के प्रति जो अनुराग-भरे भाव थे और रावण की नीतियों से जो विरोध था, उससे उसके भीतर की उद्विग्नता बढ़ गई थी।

यदि नलकूबर का शाप नहीं होता तो वह सीता का जबरदस्ती शीलभंग कर देता। घोर दुश्चिंता के कारण रावण बौखला गया।

वह आया और उसने धमकी दी कि यदि सीता उसकी बात नहीं मानेगी तो वह उसके राम-लक्ष्मण का वध करके उसके सामने ला देगा...

सीता ने रावण की ओर घृणा-भरी दृष्टि से देखकर कहा, "राक्षसराज!

में बार-बार भ्रम का शिकार नहीं हो सकती। मेरे राम को कोई नहीं मार सकता। फिर तुम्हारे जैसा कामी कीट और दुराचारी तो उनका बाल भी बांका नहीं कर सकता।''

रावण हार गया। वह क्रोध से फुफकारता हुआ चला गया।

त्रिजटा एक बेल के पीछे छुपी थी।

जैसे ही रावण गया वैसे ही उसने आकर कहा, ''सीते! तुम्हें अब जरा भी नहीं घबराना चाहिए। राम को पता चल गया है कि तुम यहां हो! अब लंका की सुरक्षा नहीं। एक वीर हनुमान ने ही सारी लंका को आग की लपटों में झोंक दिया। फिर यदि स्वयं राम आ गए तो इस दुराचारी को समाप्त करने में क्या देर लगेगी!''

''त्रिजटा! तू नहीं होती तो मैं अधीर हो जाती हूं। तूने मुझे बड़ी सांत्वना और शांति पहुंचाई है।''

त्रिजटा ने कहा, ''सीते! मनुष्य अपनी वृत्तियों से देव-दानव होता है और उसी के अनुसार वह अपने कर्मों का फल पाता है! अब अधिक दिन तुम्हें प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ेगी। तेरे राम आते ही होंगे।''

सीता ने टपटप अश्रु गिराए और राम-राम कहने लगी।

सीता प्रतीक्षारत थी। उधर लंका पर चढ़ाई करने की योजना बनाई जाने लगी। लंका तक पहुंचने में समुद्र पार करना पड़ता था, अतः विश्वकर्मा के दक्ष शिल्पी पुत्र नल ने काठ-पत्थर की सहायता से पुल बना दिया। विभीषण राम की सहायता कर ही रहा था। वह सबसे पहले सागर पार गया। इसके बाद राम-लक्ष्मण अपनी वानर-सेना के साथ लंका पर चढ़ाई कर बैठे।

राम ने युद्ध आरंभ करने के पहले सीता का ध्यान किया और लंका पर आक्रमण कर दिया।

युद्ध में रावण के महान् योद्धा निरंतर तेरह दिन तक लड़ते रहे। महारथी धूम्राक्ष, वज्रदंष्ट्र, अकंपन, प्रहस्त, मेघनाद, कुंभकर्ण, त्रिशिरा, देवांतक आदि विकट योद्धा मारे गए। यह युद्ध तेरह दिनों तक चला।

चौदहवें दिन स्वयं रावण राम से लड़ने के लिए युद्धभूमि पर उतरा। उसके साथ बड़े-बड़े वीर सैनिक थे।

उसने दहाड़कर कहा, ''या तो आज मैं राम को मार डालूंगा अथवा राम मुझे मार डालेगा। आज निर्णायक युद्ध होगा। तुम सब आज मेरे साथ अंतिम युद्ध करने के लिए चलो।''

उस दिन दोनों ओर से भयंकर से भयंकरतम आयुधों का प्रयोग हुआ। ये शस्त्र विनाश के प्रतीक थे।

उधर रावण अपने शस्त्रों का प्रयोग कर रहा था और इधर राम।

रोमांचक युद्ध था वह।

अंत में राम और रावण आमने-सामने आ गए। दोनों दिव्यास्त्रों की बौछार कर रहे थे। एक बार तो रावण ने राम के विश्वास को हिला दिया।

राम कांप उठा, पर उसने संभलकर देवाधिदेव इंद्र की शक्ति का उपयोग किया। राम-रावण युद्ध पूरे चौबीस घंटे चला। राम मन-ही-मन रावण की महाशक्ति और उसके आयुधों के प्रभाव को मान गया।

अब रावण के वध करने का एक ही उपाय बच गया था। उन्होंने भगवान अगस्त्य मुनि के दिए हुए ब्रह्मास्त्र को छोड़ दिया।

रावण ने अपने आयुधों से उसे रोकने की बड़ी चेष्टा की, पर वह असफल रहा। उस ब्रह्मास्त्र ने रावण के हृदय को विदीर्ण करके रख दिया।

रावण की मृत्यु से समस्त देवता प्रसन्न हो गए। पर विभीषण शंकाकुल होकर बिलखने लगा।

तब स्वयं राम ने रावण की प्रशंसा की और कहा, ''वह परमज्ञानी, तपस्वी, महात्मा और वीर पुरुष था। उसने एक सम्माजनक मृत्यु का वरण किया, इसलिए वह प्रशंसा के योग्य है।''

राम ने सुग्रीव, अंगद, नल, हनुमान आदि का आभार माना।

जैसे ही इन औपचारिकताओं से मुक्ति मिली, राम को सीता की याद सताने लगी। वह उद्विग्न और अधीर हो उठा।

तुरंत हनुमान को सीता के पास भेजा गया। सीता ने हनुमान को देखा तो भाव-विह्वल होकर बोली, ''कपिवर! क्या संवाद लाए हो?''

''मातेश्वरी! राम विजयी हो गए हैं और रावण अपने परिवार के साथ मारा गया।''

''कपिवर! तुमने यह संवाद सुनाकर मुझे तार दिया। मैं तुम्हें इस शुभ संवाद के लिए क्या उपहार दूं?''

''सेवक को उपहार देने की कोई आवश्यकता नहीं। आपकी प्रशंसा ही मेरा पुरस्कार है।''

हनुमान ने चारों ओर देखा। भयभीत राक्षसी पहरेदारिनें खड़ी थीं। उनकी ओर रोष-भरी दृष्टि से देखकर हनुमान ने कहा, ''इन दुष्टाओं ने आपको बड़ा कष्ट दिया है। मैं इन्हें मार डालना चाहता हूं।''

सीता ने हनुमान को रोकते हुए कहा, ''ये दासियां हैं, पराधीन हैं। स्वामी की आज्ञा मानना इनका धर्म है। ये क्षमा के योग्य हैं।''

हनुमान ने सीता की आज्ञानुसार सबको क्षमा कर दिया।

थोड़ी देर बाद राम और सीता का मिलन हो गया।

सीता 'आर्यपुत्र...आर्यपुत्र' कहकर राम के गले लग गई और रोती रही।

राम ने सीता को अस्वीकार कर दिया, क्योंकि उसे भय था कि पराए घर रहकर सीता पवित्र है या नहीं? वह बोला, ''यह विवादास्पद संदेह सारी प्रजा को सालता रहेगा...इसलिए तुम्हें परीक्षा देनी होगी।''

सीता को राम से यह आशा न थी। उसको लगा कि राम अपना सारा विवेक और शिष्टता भूल गए हैं। सर्वशक्तिमान और भगवान की गरिमा लिए हुए उसके पति राम क्या इतने संकीर्ण हैं? अपनी सती पत्नी पर भी संदेह करते हैं? उसके नारीत्व व सतीत्व की परीक्षा लेना चाहते हैं।

उसने तड़पकर कहा, ''आर्यपुत्र! मैं आपकी धर्मपत्नी हूं। मेरे शील और सदाचार के प्रमाण का कोई मूल्य आपके सामने नहीं है। अच्छा, कोई बात नहीं! मैं अग्नि में प्रवेश करके अपनी पवित्रता और सत्य का प्रमाण दूंगी।''

सीता ने अग्नि में प्रवेश कर लिया! अग्नि सती सीता को जला नहीं सकी! सीता की पवित्रता की परीक्षा हो गई।

राम ने आंसू बहाकर कहा, ''यदि मैं यह परीक्षा नहीं लेता तो हम सबकी बड़ी लोकनिंदा होती।''

सीता ने नाराजगी से कहा, ''पुरुष सदा स्त्री की ही परीक्षा क्यों लेता है? वह स्वयं परीक्षा क्यों नहीं देता?''

''समाज-व्यवस्था के अनुसार मुझे ऐसा करना पड़ा, सीते! मैं क्षमा चाहता हूं।''

और राम-सीता का मिलन हो गया।

वनवास की अवधि पूरी हो गई थी। राम, लक्ष्मण और सीता अयोध्या लौट आए। भरत ने उन्हें उनकी पादुका पहनाई जिन्हें नमन करके भरत ने चौदह वर्ष अयोध्या का प्रशासन चलाया था।

राम का बड़ी धूमधाम से अभिषेक हो गया। बड़े-बड़े सामंत और जन-प्रतिनिधि उपस्थित थे।

राम ने बड़े उत्साह से जन-कल्याण के कार्य किए। उनका राज्य रामराज्य कहलाया। उनके राज्य में हर प्रकार की सुख-शांति, संतोष, समृद्धि और समता व्याप्त हो गई।

पर नारी-जीवन तो विडंबनाओं व दु:खों का पर्याय है!

राम के सिंहासन पर बैठने के चंद दिनों बाद सीता पर एक संकट और मंडराया।

एक दिन राम रात्रि के समय नगर-परिक्रमा कर रहे थे तो उन्होंने एक पुरुष-स्वर सुना, ''कुलटा, निकल जा यहां से! मैं राम जैसा स्त्री-कामी नहीं हूं जो पराए घर पर रहने वाली को अपने घर में रख लूं।''

राम को इससे गहरा आघात लगा, पर उन्होंने यह बात सीता को नहीं बताई।

फिर गुप्तचर छोड़े। उन्होंने भी यह कहा कि सीता को रखने के कारण लोग तरह-तरह से रघुकुल के सम्मान को घटाने वाली बातें करते रहते हैं।

राम इस लोकापवाद से भयभीत हो गए। यह जानते हुए भी कि सीता निर्दोष है, उन्होंने अपने विश्वासपात्र लक्ष्मण को सीता को वाल्मीकि के आश्रम में छोड़ आने के आदेश दे दिए।

तमसा नदी पार करके जब लक्ष्मण सीता को लेकर आश्रम के निकट पहुंचे तब वे रोने लगे।

सीता ने कारण पूछा, तो लक्ष्मण ने सच-सच कह दिया, ''भैया राम

ने आदेश दिया है कि मैं आपको महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में छोड़ आऊं।''

सीता को गुस्सा और पीड़ा दोनों हुईं। उसने एक पत्नी के रूप में सोचा कि क्या सचमुच उसके पति राम की बुद्धि खराब हो गई है?

वह बोली, ''क्या आपके भैया राम इतने दुर्बल हैं? महाशक्तिशाली, मेधावी, धैर्यवान राम क्या लोकापवाद को ठीक नहीं कर सकते या मैं नारी हूं, इसलिए बार-बार मुझे प्रताड़ित किया जाता है?''

लक्ष्मण ने अपराधी की तरह सिर झुकाकर कहा, ''माता! मैं इसका तर्कपूर्ण उत्तर देने में असमर्थ हूं। मैं तो भैया का केवल आदेश पालन कर सकता हूं...मैं पराधीन हूं।''

सीता ने लक्ष्मण से कहा, ''यह कदाचित् मेरे पूर्वजन्मों के पापों का फल है। मेरा यथायोग्य सबको प्रणाम कह देना।''

लक्ष्मण महासती सीता को वहीं रोती छोड़कर स्वयं रोता हुआ चला गया।

कालांतर में सीता ने एक साथ दो बच्चों को जन्म दिया। उनके नाम लव-कुश पड़े—स्वयं महर्षि वाल्मीकि ने उनके नामकरण-संस्कार किए।

बच्चे धीरे-धीरे बड़े होने लगे। सीता का जीवन उन दोनों बालकों के कारण बड़ा ही सरस हो गया।

लव-कुश दोनों अपने को ऋषि-संतान मानते थे।

उधर राम भी सीता की स्वर्ण-प्रतिमा बनाकर धर्म के कार्यों की पूर्ति करते थे।

राम ने अश्वमेध यज्ञ करने का निश्चय किया। राम के यज्ञ का घोड़ा लव-कुश ने पकड़ लिया और उन्होंने राम की सेना को भी हरा दिया।

तब राम स्वयं वहां आए। उन्होंने दोनों बालकों का परिचय पूछा तो दोनों ने सारी कथा बता दी। राम ने उन्हें अपने बेटे जानकर गले से लगा लिया और रो पड़े।

उन्होंने सीता से क्षमा मांगी और अयोध्या चलने के लिए कहा।

महर्षि वाल्मीकि ने राम से कहा, ''आप एक वृहत सभा का आयोजन करें और सीता को निर्दोष घोषित करके उसे ग्रहण करें।''

राम ने वाल्मीकि की शर्त मान ली। उन्होंने अयोध्या में सभा का आयोजन किया।

तब वाल्मीकि ने सर्वसाधारण एवं प्रतिष्ठित लोगों की उस विराट सभा में कहा, ''सीता पतिव्रता, सदाचारिणी और धर्मनिष्ठ है। यदि इसमें जरा भी असत्य हो तो मेरी वर्षों की तपस्या का फल मुझे न मिले! मैं सर्वप्रिय राम से प्रार्थना करता हूं कि वह सीता को ग्रहण करें।''

न जाने क्यों राम ने कहा, ''मुनिश्रेष्ठ! इस संबंध में समाज का निर्णय मुझे मान्य होगा। स्वयं सीता आज स्पष्टीकरण देकर प्रजा का विश्वास प्राप्त करे।''

सीता का धैर्य टूट गया। पति द्वारा अब भी प्रदर्शित हिचकिचाहट ने उसे पीड़ा के सागर में डुबा दिया। लज्जा, ग्लानि और पीड़ा से आहत सीता ने चीखकर कहा, ''मां धरती! यदि मैंने कल्पना में भी परपुरुष का ध्यान नहीं किया हो तो तू मुझे अपनी गोद में ले ले। मैं ऐसे समाज और पति के साथ रहना ही नहीं चाहती।''

उसी क्षण धरती फट गई। व्यथित सीता देखते-देखते धरती में समा गई।

भूमिजा सीता पुनः भूमि में ही लीन हो गई।

सब लोग बिलख उठे।

राम भी सीता के लिए जीवन-पर्यंत रोते रहे।

●●●

यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'

जन्म : 15 अगस्त 1932, बीकानेर (राजस्थान)

प्रकाशित कृतियां :

● दीया जला : दीया बुझा ● संन्यासी और सुंदरी ● एक और मुख्यमंत्री ● ढोलन कुंजगली ● पांव में आंख वाले ● बड़ा आदमी ● हजार घोड़ों का सवार ● प्रजा-राम ● कुरसी गायब हो गई ● जीवन-युद्ध (उपन्यास)

● जनम की पीड़ा ● पीटर बहुत बोलता है ● इक्यावन कहानियां ● उस्मानियां ● महापुरुष ● एक इनसान की मौत ● खोल ● जकड़न ● नाजायज कब्जा ● नरक दर नरक ● चर्चित कहानियां (कहानी-संग्रह)

● पृथ्वी और तारा ● ताशघर (नाटक) आदि 100 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित।

सम्मान/पुरस्कार :

साहित्य अकादमी सम्मान एवं राजस्थान साहित्य अकादमी के सर्वोच्च 'मीरा' सम्मान तथा 'फणीश्वरनाथ रेणु राष्ट्रीय पुरस्कार' सहित अनेक सम्मान एवं पुरस्कार।

संप्रति : स्वतंत्र लेखन।

श्रेष्ठ पौराणिक नारियां